अक्टूबर 2026 हिन्दी मासिक पत्रिका ₹15

मुकुंद लेखनी

‘27 में 27 हजार’

बूथ पर बिछ रही 2027 की सियासी बिसात



मातृशक्ति का सम्मान



60 वर्ष एवं उससे अधिक आयु की
उत्तर प्रदेश की महिलाओं को नि:शुल्क बस यात्रा
की सुविधा

'लोकमाता अहिल्याबाई मातृशक्ति यात्रा' योजना





योजना साकार-संवेदनशील सरकार

- लोक कल्याण संकल्प पत्र का वादा पूरा
- 60 वर्ष+ आयु की महिलाओं को आजीवन निःशुल्क यात्रा की सुविधा
- उत्तर प्रदेश राज्य सड़क परिवहन निगम की साधारण बसों में महिलाओं को नि:शुल्क यात्रा की सुविधा
- पात्र महिलाओं को निगम द्वारा उपलब्ध कराये जायेंगे विशेष स्मार्ट कार्ड
- आधार कार्ड दिखाकर भी पात्र महिलाएं उठा सकेंगी लाभ
- योजना पर ₹22 करोड़+ मासिक व्यय भार अनुमानित
- प्रतिदिन 88,000+ महिला यात्रियों को लाभ मिलने का अनुमान

मातृशक्ति लाभ उठाएं-मनचाही यात्रा पर जाएं

विकास की गति अपार
डबल इंजन सरकार

परिवहन विभाग, उत्तर प्रदेश
सूचना एवं जनसम्पर्क विभाग, उत्तर प्रदेश

मुख्यमंत्री हेल्पलाइन 1076

वर्ष : 01, अंक : 03, अक्टूबर -2026

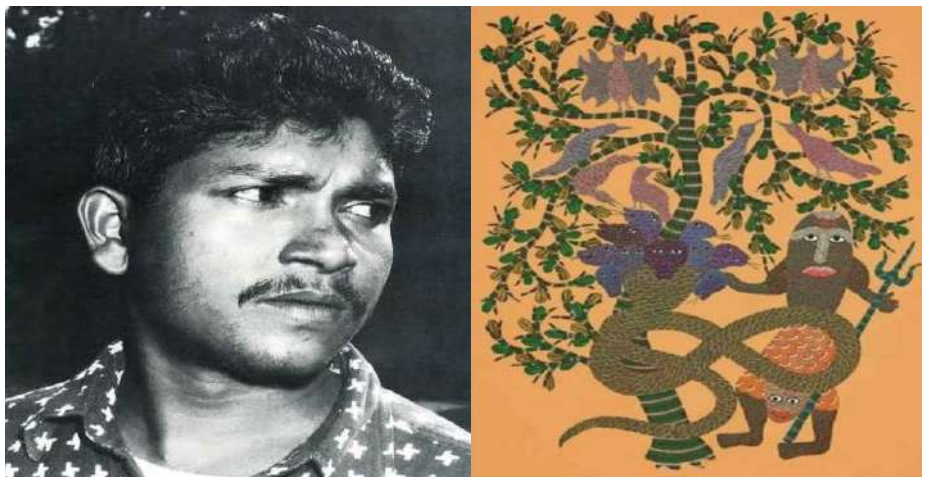
UPHIN/26/A6820

इस अंक में

1



5 रोजगार के सवाल पर अब भी जवाब का इंतजार



16 कला के बाज़ार में जनगण कलम की धमक



28 चुनाव आयोग बनाम विपक्षी दल



32 आ गये मेरी मौत का तमाशा देखने

मुकुंद लेखनी

–संपादक–

सौरभ भट्ट
मो.- 9918888489

उप सम्पादक
सन्दीप सिंह
मो.- 9450263005

उत्तर प्रदेश ब्यूरो
अशोक मिश्रा
मो.- 6393514145

संपादकीय कार्यालय
आवास नं0 : 33,
साईं रेजिडेंसी, उत्तरधौना,
लखनऊ,
उत्तर प्रदेश - 226028

स्वामी, प्रकाशक एवं मुद्रक सौरभ भट्ट के द्वारा आवास नं0 : 33, साईं रेजिडेंसी, उत्तरधौना, लखनऊ, उत्तर प्रदेश – 226028 से प्रकाशित तथा लक्ष्मी ऑफसेट 539क/100क/240, देवपुरी भवन, संजय गांधी पुरम, फैजाबाद रोड लखनऊ से मुद्रित।

सौरभ भट्ट
सम्पादक
मो.– 9918888489

हमें अपने पाठकों की प्रतिक्रिया और विचारों को जानना अच्छा लगेगा। यदि पत्रिका की किसी भी सामग्री पर आपको आपत्ति है, तो कृपया हमें अपने सुझाव भेजें।

हम नए लेखों का भी स्वागत करते हैं! यदि आप किसी विषय पर लेख भेजना चाहते हैं, तो कृपया उसे हमें भेजें। हम आपके लेख पर विचार करेंगे।

ईमेल पता : mukundlekhni@gmail.com
फोन नंबर : 9918888489

पत्रिका में समस्त विवादों के लिए न्याय क्षेत्र लखनऊ न्यायालय मान्य होगा।



सौरभ भट्ट
संपादक

युवा शक्ति, आत्मनिर्भरता और रोजगार के नए अवसर

युवा किसी भी देश की सबसे बड़ी ताकत होते हैं। उनकी ऊर्जा, प्रतिभा और कुछ नया करने का जज्बा देश की प्रगति को नई दिशा दे सकता है। लेकिन जब पढ़े-लिखे युवाओं को लंबे समय तक नौकरी के अवसर नहीं मिलते, तो उनके सामने आर्थिक संकट के साथ भविष्य को लेकर अनिश्चितता भी खड़ी हो जाती है। ऐसे में स्वरोजगार एक ऐसा रास्ता बन सकता है, जो युवाओं को आत्मनिर्भर बनाने के साथ देश की अर्थव्यवस्था को भी मजबूती दे।

आज रोजगार का अर्थ केवल सरकारी या निजी नौकरी तक सीमित नहीं रहना चाहिए। बदलते समय में छोटे व्यवसाय, डिजिटल सेवाएं, कृषि आधारित उद्योग, ऑनलाइन कारोबार, हस्तशिल्प, खाद्य प्रसंस्करण और स्थानीय उत्पादों की बिक्री जैसे क्षेत्रों में रोजगार की व्यापक संभावनाएं हैं। जरूरत है कि युवाओं को इन अवसरों की सही जानकारी, आवश्यक प्रशिक्षण और आर्थिक सहायता उपलब्ध कराई जाए।

उत्तर प्रदेश जैसे बड़े राज्य में स्वरोजगार की संभावनाएं विशेष रूप से महत्वपूर्ण हैं। यहां गांवों से लेकर शहरों तक ऐसे अनेक काम शुरू किए जा सकते हैं, जो स्थानीय जरूरतों को पूरा करने के साथ दूसरों के लिए भी रोजगार पैदा करें। कोई युवा मोबाइल रिपेयरिंग सेंटर खोल सकता है, कोई ऑनलाइन सेवाओं का काम शुरू कर सकता है, तो कोई स्थानीय खाद्य उत्पादों, कपड़ों या हस्तशिल्प को डिजिटल बाजार तक पहुंचा सकता है। छोटे स्तर पर शुरू हुआ कारोबार भी सही योजना, गुणवत्ता और मेहनत के सहारे आगे बढ़ सकता है।

हालांकि, स्वरोजगार की राह इतनी आसान भी नहीं है। किसी व्यवसाय को शुरू करने के लिए पूंजी, प्रशिक्षण, बाजार की समझ और ग्राहकों का भरोसा जरूरी होता है। कई युवाओं के पास अच्छा विचार और काम करने की क्षमता होती है, लेकिन आर्थिक संसाधनों की कमी उनके कदम रोक देती है। वहीं, कुछ युवा कर्ज लेने के बाद बाजार में पर्याप्त अवसर नहीं मिलने के कारण मुश्किलों में फंस जाते हैं। इसलिए केवल ऋण बांटना या योजनाओं की घोषणा करना पर्याप्त नहीं है। युवाओं को कारोबार की शुरुआत से लेकर उसे सफलतापूर्वक चलाने तक सहयोग देना होगा।

सरकार की जिम्मेदारी है कि स्वरोजगार से जुड़ी योजनाओं की प्रक्रिया सरल, पारदर्शी और सुलभ बनाई जाए। बैंकों से ऋण प्राप्त करने में अनावश्यक देरी न हो और पात्र युवाओं को समय पर सहायता मिले। साथ ही, कौशल विकास कार्यक्रमों को बाजार की वास्तविक जरूरतों से जोड़ा जाए। युवाओं को यह भी सिखाया जाए कि व्यवसाय की योजना कैसे बनाएं, लागत और मुनाफे का हिसाब कैसे रखें, उत्पाद की गुणवत्ता कैसे बनाए रखें और डिजिटल माध्यमों से अपने ग्राहकों तक कैसे पहुंचें।

इसके साथ ही, स्थानीय स्तर पर बाजार उपलब्ध कराना भी जरूरी है। यदि किसी युवा ने अच्छा उत्पाद तैयार किया है, लेकिन उसे बेचने का उचित माध्यम नहीं है, तो उसका हुनर सीमित रह जाएगा। सरकारी संस्थानों, स्थानीय निकायों, व्यापारिक संगठनों और ऑनलाइन प्लेटफॉर्म को मिलकर ऐसे अवसर तैयार करने चाहिए, जहां छोटे उद्यमियों को अपने उत्पाद और सेवाएं बेचने का मौका मिले। ग्रामीण क्षेत्रों में स्वयं सहायता समूहों और स्थानीय उद्यमों को भी इस व्यवस्था से जोड़ा जा सकता है।

यह भी ध्यान रखना होगा कि स्वरोजगार को बेरोजगारी की समस्या का अकेला समाधान नहीं माना जा सकता। देश और प्रदेश में सरकारी तथा निजी क्षेत्र में पर्याप्त नियमित नौकरियां पैदा करना भी उतना ही आवश्यक है। हर युवा उद्यमी नहीं बन सकता और न ही हर व्यक्ति के पास व्यवसाय शुरू करने की परिस्थितियां होती हैं। इसलिए रोजगार नीति में नौकरी के अवसरों और स्वरोजगार, दोनों को बराबर महत्व मिलना चाहिए।

युवाओं को भी बदलते समय के साथ अपने कौशल को निखारने, नई तकनीक सीखने और उपलब्ध अवसरों को पहचानने की दिशा में आगे बढ़ना होगा। असफलता के डर से प्रयास छोड़ने के बजाय सही जानकारी, छोटी शुरुआत और व्यावहारिक योजना के साथ आगे बढ़ना चाहिए। हालांकि, इसके लिए उन्हें ऐसा माहौल मिलना जरूरी है, जहां जोखिम उठाने वाले युवाओं को उचित मार्गदर्शन और जरूरत के समय सहयोग मिल सके।

दरअसल, युवा उड़ान को हौसला तभी मिलेगा, जब उनके सपनों को अवसरों का साथ मिलेगा। आत्मनिर्भरता का अर्थ केवल अपना काम शुरू कर लेना नहीं, बल्कि सम्मानजनक आय अर्जित करना, कारोबार को टिकाऊ बनाना और जरूरत पड़ने पर दूसरों के लिए भी रोजगार पैदा करना है।

युवाओं को रोजगार मांगने वाला ही नहीं, रोजगार देने वाला बनाने का लक्ष्य तभी पूरा होगा, जब योजनाओं का लाभ कागजों से निकलकर जमीन तक पहुंचेगा। युवा शक्ति को सही प्रशिक्षण, आसान वित्तीय सहायता और बाजार का भरोसा मिले, तो स्वरोजगार व्यक्तिगत सफलता का माध्यम ही नहीं, बल्कि सामाजिक और आर्थिक बदलाव की मजबूत नींव भी बन सकता है।

रोजगार के सवाल पर अब भी जवाब का इंतजार



परमजीत सिंह चंधोक



2013-14 का दौर आज भी याद आता है। देश महंगाई, भ्रष्टाचार और बेरोजगारी जैसी समस्याओं से परेशान था। युवाओं में रोजगार को लेकर बड़ी उम्मीदें थीं। नरेंद्र मोदी उस समय भाजपा के प्रधानमंत्री पद के उम्मीदवार थे। चुनाव के दौरान रोजगार और युवाओं के भविष्य को लेकर बड़े वादे किए गए। देश ने भाजपा को बहुमत दिया और नरेंद्र मोदी प्रधानमंत्री बने।

इसके बाद एक दशक से ज्यादा समय बीत चुका है। इस दौरान देश की अर्थव्यवस्था में कई बदलाव हुए। सरकार ने रोजगार और स्वरोजगार के लिए कई योजनाएं शुरू कीं। कौशल विकास, मुद्रा योजना, स्टार्टअप इंडिया, रोजगार मेले और प्रधानमंत्री इंटर्नशिप योजना जैसी पहलें सामने आईं। लेकिन रोजगार का सवाल आज भी पूरी तरह खत्म नहीं हुआ है।

सरकार की ओर से लगातार नियुक्ति-पत्र बांटे जाने और रोजगार सृजन के आंकड़े पेश किए जाते हैं। रोजगार मेलों के जरिए भी बड़ी संख्या में युवाओं को सरकारी नौकरियों के नियुक्ति-पत्र दिए गए हैं। लेकिन सवाल यह है कि देश में हर साल रोजगार की तलाश में निकलने वाले करोड़ों युवाओं की जरूरत पूरी करने के लिए ये प्रयास कितने पर्याप्त हैं?

रोजगार की समस्या का एक दूसरा पहलू भी है। बहुत से युवा काम तो कर रहे हैं, लेकिन उन्हें उनकी योग्यता के मुताबिक काम नहीं मिल रहा। इंजीनियर, स्नातक और डिप्लोमा धारक कई बार ऐसी नौकरियां करने को मजबूर हैं, जिनमें उनकी शिक्षा और प्रशिक्षण का उपयोग नहीं हो पाता। ऐसे रोजगार से बेरोजगारी का आंकड़ा भले कम हो जाए, लेकिन युवा की आर्थिक परेशानी पूरी तरह खत्म नहीं होती।

कौशल विकास योजनाओं के तहत लाखों युवाओं को प्रशिक्षण दिया गया है। लेकिन प्रशिक्षण के बाद कितने युवाओं को स्थायी और बेहतर रोजगार मिला, यह सवाल भी महत्वपूर्ण है। किसी युवा को प्रमाण-पत्र मिल जाना सफलता की अंतिम मंजिल नहीं है। असली सफलता तब होगी, जब उसे उसके कौशल के अनुसार अच्छी नौकरी या टिकाऊ स्वरोजगार मिले।

सरकारी नौकरियों को लेकर युवाओं में आज भी जबरदस्त आकर्षण है। इसका एक कारण निजी क्षेत्र में नौकरी की अस्थिरता और कम वेतन भी है। सरकारी नौकरी में नियमित वेतन, नौकरी की सुरक्षा और दूसरी सुविधाएं युवाओं को आकर्षित करती हैं। यही वजह है कि कुछ हजार पदों के लिए लाखों युवा आवेदन करते हैं।

केंद्र और राज्य सरकारों में बड़ी संख्या में पद खाली होने की बात भी समय-समय पर सामने आती रही है। इन पदों को भरने से न केवल युवाओं को रोजगार मिलेगा, बल्कि सरकारी विभागों की कार्यक्षमता भी बढ़ेगी। स्कूलों में शिक्षक, अस्पतालों में डॉक्टर और नर्स, पुलिस तथा दूसरे विभागों में कर्मचारियों की कमी दूर होने से आम जनता को भी बेहतर सेवाएं मिल सकती हैं।

उत्तर प्रदेश में भी रोजगार बड़ा मुद्दा है। प्रदेश की बड़ी युवा आबादी सरकारी और निजी क्षेत्र में रोजगार की तलाश कर रही है। सरकार ने रोजगार और निवेश बढ़ाने के लिए कई योजनाएं शुरू की हैं। रोजगार मेले आयोजित किए जा रहे हैं और नियुक्ति-पत्र भी बांटे जा रहे हैं। लेकिन प्रदेश में रोजगार की जरूरत इतनी बड़ी है कि केवल रोजगार मेलों के माध्यम से इस समस्या का समाधान संभव नहीं है।

रोजगार बढ़ाने के लिए निजी क्षेत्र और छोटे-बड़े उद्योगों को मजबूत करना होगा। नए कारखाने खुलेंगे, निवेश बढ़ेगा और छोटे कारोबार आगे बढ़ेंगे तो बड़ी संख्या में रोजगार पैदा हो सकते हैं। इसके लिए बेहतर बुनियादी ढांचा, आसान कारोबारी माहौल, कौशलयुक्त युवा और बाजार की मांग जरूरी है।

कृषि क्षेत्र में भी रोजगार की स्थिति पर ध्यान देना होगा। गांवों में बड़ी संख्या में लोग खेती पर निर्भर हैं, लेकिन खेती से मिलने वाली आय कई परिवारों के लिए पर्याप्त नहीं है। कृषि से जुड़े उद्योग, खाद्य प्रसंस्करण, डेयरी, भंडारण, परिवहन और ग्रामीण कारोबार को बढ़ावा देकर गांवों में रोजगार के नए अवसर पैदा किए जा सकते हैं।

आज के युवा की जरूरत केवल कोई भी नौकरी नहीं है। वह ऐसी नौकरी चाहता है जिससे उसका भविष्य सुरक्षित हो, आय बढ़े और वह अपने परिवार की जिम्मेदारियां पूरी कर सके। वह चाहता है कि उसकी पढ़ाई और कौशल का सही इस्तेमाल हो।

इसलिए रोजगार के आंकड़ों के साथ उसकी गुणवत्ता पर भी ध्यान देना जरूरी है। कितने लोगों को काम मिला, इसके साथ यह भी देखना होगा कि उन्हें कितना वेतन मिला, नौकरी कितनी स्थायी है और क्या वह काम उनकी योग्यता के अनुरूप है।

भारत की युवा आबादी देश के लिए बड़ी ताकत है। लेकिन यह ताकत तभी विकास का आधार बनेगी, जब युवाओं को पर्याप्त और बेहतर रोजगार मिलेगा। रोजगार बढ़ेगा तो परिवारों की आय बढ़ेगी, बाजार मजबूत होगा और अर्थव्यवस्था को भी गति मिलेगी।

रोजगार का सवाल केवल सरकार या किसी एक राजनीतिक दल का सवाल नहीं है। यह पूरे देश की अर्थव्यवस्था और भविष्य से जुड़ा मुद्दा है। सरकार को रोजगार के स्पष्ट लक्ष्य तय करने होंगे और यह भी बताना होगा कि उन लक्ष्यों को पूरा करने के लिए क्या कदम उठाए जा रहे हैं।

देश का युवा आज भी उम्मीद के साथ रोजगार की तलाश में है। उसे केवल आश्वासन नहीं, अवसर चाहिए। उसे केवल प्रमाण-पत्र नहीं, काम चाहिए। और सबसे जरूरी है कि उसे ऐसा काम मिले जिससे वह अपने भविष्य को बेहतर बना सके।

रोजगार का सवाल जितनी जल्दी और गंभीरता से हल होगा, देश की अर्थव्यवस्था और समाज दोनों उतनी ही तेजी से आगे बढ़ेंगे।

आधुनिक जीवनशैली के आघात से हृदय की रक्षा जरूरी

ललित गर्ग

हृदय केवल शरीर का एक अंग नहीं, जीवन की धड़कन है। जब तक दिल धड़कता है, तब तक जीवन में उम्मीद, संवेदना, प्रेम और कर्म की संभावनाएं बनी रहती हैं। लेकिन विडंबना यह है कि आधुनिक सभ्यता ने जीवन को सुविधाजनक तो बनाया है, पर स्वस्थ और संतुलित बनाने में हम पीछे छूटते जा रहे हैं। हमारी तेज रफ्तार जिंदगी, तनाव, अनियमित दिनचर्या, खान-पान की बदलती आदतें, शारीरिक निष्क्रियता और निरंतर बढ़ती मानसिक बेचैनी हृदय पर ऐसा दबाव डाल रही हैं, जिसका परिणाम हृदय रोगों के बढ़ते खतरे के रूप में सामने आ रहा है।

हर वर्ष 29 सितंबर को विश्व हृदय दिवस मनाया जाता है। विश्व हृदय महासंघ के अनुसार हृदय एवं रक्तवाहिका संबंधी रोग दुनिया में मृत्यु का सबसे बड़ा कारण हैं और प्रतिवर्ष लगभग दो करोड़ लोगों की मृत्यु इन रोगों से होती है। वर्ष 2026 के विश्व हृदय दिवस का संदेश है—"हृदय रोग कई बार सामने दिखाई नहीं देता, इसलिए उसके संकेतों को नजरअंदाज नहीं करना चाहिए।

मैंने अपने पूर्व के आलेख 'भारतीय दिल खतरे में' और हृदय स्वास्थ्य से जुड़े अन्य लेखों में बार-बार इस चिंता को व्यक्त किया है कि भारतीय समाज में बदलती जीवनशैली हमारे दिल के लिए गंभीर चुनौती बनती जा रही है। आज यह चिंता और अधिक प्रासंगिक हो गई है। हमारे आसपास ऐसे अनेक युवा दिखाई देते हैं जो कम उम्र में ही उच्च रक्तचाप, मोटापा, मधुमेह, कोलेस्ट्रॉल और हृदय संबंधी समस्याओं से जूझ रहे हैं। प्रश्न केवल यह नहीं कि हृदय रोग क्यों बढ़ रहे हैं, प्रश्न यह भी है कि हमने अपनी जीवनशैली को हृदय के विरुद्ध क्यों बना दिया है?

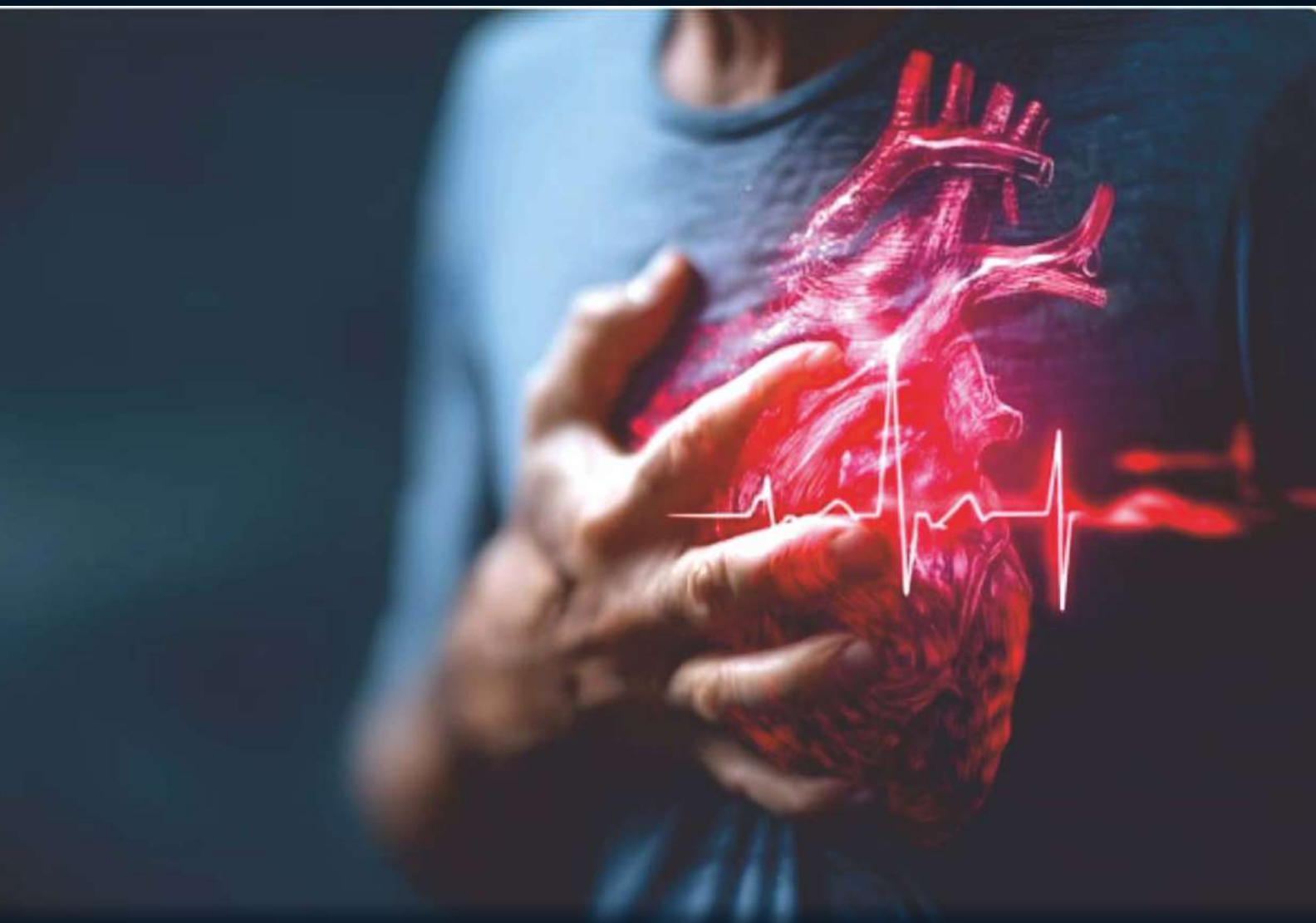
आज सुविधा ने श्रम को कम कर दिया है। घंटों बैठकर काम करना, मोबाइल और कंप्यूटर पर लगातार सक्रिय रहना, पैदल चलने की आदत का कम होना, देर रात तक जागना और सुबह की प्राकृतिक लय से दूर होना शरीर की जैविक व्यवस्था को प्रभावित करता है। दूसरी ओर स्वाद और सुविधा के नाम पर अत्यधिक नमक, चीनी, वसा और प्रसंस्कृत खाद्य पदार्थों का सेवन बढ़ रहा है। विश्व स्वास्थ्य संगठन भी अस्वास्थ्यकर आहार, शारीरिक निष्क्रियता, तंबाकू, मोटापा, उच्च रक्तचाप, बढ़ी हुई रक्तशर्करा और रक्त में वसा को हृदय रोग के प्रमुख जोखिम कारकों में गिनता है।

लेकिन हृदय का संकट केवल भोजन और व्यायाम का संकट नहीं है। यह मन का संकट भी है। तनाव, प्रतिस्पर्धा, असंतोष, क्रोध, ईर्ष्या, चिंता और हर समय आगे निकलने की बेचैनी व्यक्ति के भीतर निरंतर मानसिक दबाव पैदा करती है। भौतिक उपलब्धियां बढ़ती जाती हैं, लेकिन मानसिक शांति घटती जाती है। हमने मकानों को बड़ा किया, लेकिन मन को छोटा कर लिया; साधन बढ़ाए, लेकिन संतोष कम कर दिया। यही आधुनिक जीवन की सबसे बड़ी विडंबना है।

इसलिए हृदय की चिकित्सा केवल अस्पताल में नहीं, जीवनशैली में भी खोजनी होगी। सुबह की सैर, नियमित व्यायाम, योग, प्राणायाम, ध्यान, पर्याप्त नींद, संतुलित भोजन और नशे से पूर्ण दूरी हृदय की सुरक्षा के सामान्य लेकिन अत्यंत प्रभावी उपाय हैं। भोजन में प्राकृतिक एवं पौष्टिक पदार्थों, फल-सब्जियों और साबुत अनाज को स्थान देना तथा अत्यधिक नमक, चीनी और संतृप्त वसा को सीमित करना जरूरी है। विश्व स्वास्थ्य संगठन के अनुसार जीवनशैली में ऐसे बदलाव तथा उच्च रक्तचाप, मधुमेह और रक्त में बढ़े वसा का समय रहते उपचार हृदयाघात और स्ट्रोक के जोखिम को कम कर सकता है।

सबसे महत्वपूर्ण आवश्यकता है—समय रहते जांच। हृदय रोग कई बार अचानक सामने आता हुआ दिखाई देता है, जबकि उसके जोखिम कारक वर्षों से शरीर में विकसित हो रहे होते हैं। रक्तचाप, रक्तशर्करा, कोलेस्ट्रॉल, वजन और चिकित्सकीय सलाह के अनुसार अन्य जांचों को उम्र और जोखिम के अनुरूप नियमित रूप से कराना चाहिए। सीने में दबाव या दर्द, सांस फूलना, असामान्य पसीना, चक्कर या दर्द का हाथ, कंधे, पीठ





अथवा जबड़े तक जाना जैसे संकेतों को सामान्य थकान मानकर टालना खतरनाक हो सकता है। हृदयाघात में समय अत्यंत महत्वपूर्ण होता है; शीघ्र चिकित्सा सहायता जीवन बचाने में निर्णायक हो सकती है।

यहां चिकित्सा विज्ञान के सामने भी एक बड़ी जिम्मेदारी है। आज जब हृदय रोग समाज के इतने बड़े हिस्से को प्रभावित कर रहे हैं, तब हमें और अधिक सुलभ, सस्ती, शीघ्र पहचान करने वाली और प्रभावी स्वास्थ्य-तकनीकों की आवश्यकता है। ऐसी जांच-पद्धतियां विकसित हों जो प्रारंभिक अवस्था में हृदय संबंधी जोखिमों की पहचान कर सकें। कृत्रिम बुद्धिमत्ता, डिजिटल स्वास्थ्य, दूरस्थ चिकित्सा, पहनने योग्य स्वास्थ्य उपकरणों और आधुनिक निदान तकनीकों का उपयोग आम नागरिक तक पहुंचना चाहिए। चिकित्सा अनुसंधान का लक्ष्य केवल जटिल हृदय रोग का उपचार करना नहीं, बल्कि रोग पैदा होने से पहले उसके खतरे को पहचानना भी होना चाहिए।

सरकारों की भूमिका भी अत्यंत महत्वपूर्ण है। हृदय स्वास्थ्य को केवल अस्पतालों और विशेषज्ञ चिकित्सकों तक सीमित नहीं रखा जा सकता। प्राथमिक स्वास्थ्य केंद्रों को मजबूत बनाकर रक्तचाप, मधुमेह और हृदय जोखिम की नियमित जांच को व्यापक बनाया जाना चाहिए। स्कूलों और कॉलेजों में शारीरिक गतिविधि एवं पौष्टिक भोजन को प्रोत्साहन मिले। शहरों में पैदल चलने और साइकिल चलाने के सुरक्षित मार्ग बढ़ें। तंबाकू नियंत्रण, स्वस्थ खाद्य विकल्पों को बढ़ावा, अत्यधिक नमक एवं अस्वास्थ्यकर वसा को कम करने के प्रयास और वायु प्रदूषण पर नियंत्रण को हृदय स्वास्थ्य की व्यापक नीति का हिस्सा बनाया जाना चाहिए। विश्व स्वास्थ्य संगठन भी जनस्वास्थ्य नीतियों, प्राथमिक स्वास्थ्य सेवाओं और जोखिम कारकों के नियंत्रण को हृदय रोगों की रोकथाम का महत्वपूर्ण आधार मानता है।

इसके साथ ही सरकारों को 'हार्ट हेल्थ इंडिया अभियान' जैसे व्यापक जन-जागरूकता कार्यक्रमों पर विचार करना चाहिए, जिसमें गांव से महानगर तक निःशुल्क या सस्ती हृदय-जांच, रक्तचाप एवं मधुमेह स्क्रीनिंग, जीवनशैली परामर्श, आपातकालीन हृदय उपचार की जानकारी और पुनर्वास सेवाओं को जोड़ा जा सके। कंपनियों और संस्थानों में भी कर्मचारियों के लिए 'हेल्दी हार्ट' कार्यक्रम चलाए जा सकते हैं। सामाजिक संस्थाएं, विद्यालय, धार्मिक संगठन और मीडिया मिलकर इसे जन-आंदोलन का रूप दे सकते हैं।

दरअसल, हृदय की रक्षा केवल डॉक्टर की जिम्मेदारी नहीं, पूरे समाज की जिम्मेदारी है। परिवार अपने भोजन और दिनचर्या को बदल सकता है, विद्यालय बच्चों में स्वस्थ आदतें विकसित कर सकते हैं, कार्यालय शारीरिक सक्रियता के अवसर दे सकते हैं और सरकार ऐसी नीतियां बना सकती है जो स्वस्थ विकल्पों को आसान एवं सुलभ बनाएं।

विश्व हृदय दिवस केवल एक दिन की औपचारिक जागरूकता का अवसर न बने। यह हमें अपने जीवन की दिशा पर पुनर्विचार करने का अवसर दे। हमें यह समझना होगा कि हृदय को स्वस्थ रखने के लिए किसी चमत्कार की प्रतीक्षा नहीं करनी है; छोटे-छोटे सही निर्णय ही बड़े परिणाम देते हैं। आज आधा घंटा चलना, आज भोजन में संयम रखना, आज तनाव को कम करना, आज धूम्रपान को छोड़ना, आज अपनी जांच कराना—ये छोटे कदम कल किसी बड़े संकट को रोक सकते हैं।

हृदय की धड़कन हमें हर क्षण एक संदेश देती है—जीवन अनमोल है, इसे असंतुलित जीवनशैली के हवाले मत करो। आधुनिकता अपनाएं, लेकिन प्रकृति से संबंध न तोड़ें; सुविधाएं लें, लेकिन श्रम को जीवन से बाहर न करें; सफलता पाएं, लेकिन स्वास्थ्य की कीमत पर नहीं।

विश्व हृदय दिवस पर संकल्प यही हो—दिल को केवल धड़कने नहीं, स्वस्थ, शांत और प्रसन्न रहने दें। क्योंकि स्वस्थ हृदय ही स्वस्थ व्यक्ति, स्वस्थ परिवार और स्वस्थ समाज की आधारशिला है।

तकनीक, वैश्वीकरण और डिजिटल चेतना



पवन शुक्ला

मानव इतिहास के इस आधुनिक दौर में तकनीक, वैश्वीकरण और डिजिटल चेतना तीन ऐसी विशाल शक्तियाँ बनकर उभरी हैं, जिन्होंने हमारी पूरी जीवन-शैली, चिंतन-प्रक्रिया और सामाजिक ताने-बाने को नया रुप दे दिया है। तकनीक जहाँ प्रगति का मूल इंजन बनी है, वहीं वैश्वीकरण ने भौगोलिक सीमाओं को तोड़कर दुनिया को एक साझा बाजार और मंच प्रदान किया है। इन दोनों के समागम से जो तीसरी और सबसे सूक्ष्म शक्ति जन्म लेती है, वह है 'डिजिटल चेतना'। यह केवल गैजेट्स या इंटरनेट का उपयोग भर नहीं है,बल्कि मानव मन का डिजिटल तंत्र से एकीकरण है,जो हमारे सोचने, समझने और आपस में जुड़ने के तरीके को बदल रहा है।

इतिहास पर दृष्टि डालें तो औद्योगिक क्रांति ने जहाँ शारीरिक श्रम को गति दी थी, वहीं इक्कीसवीं सदी की डिजिटल क्रांति ने बौद्धिक क्षमताओं का विस्तार कर दिया है। कंप्यूटर, इंटरनेट और अब आर्टिफिशियल इंटेलिजेंस (AI) जैसी तकनीकों ने ज्ञान और सूचना के प्रसार की गति को असीम बना दिया है।तकनीक अब केवल एक साधन या उपकरण मात्र नहीं रह गई है, बल्कि यह मानव जीवन के हर पहलू—शिक्षा, स्वास्थ्य,शासन और व्यापार—में एक बुनियादी आवश्यकता बन चुकी है।

इस तकनीकी विकास का सबसे बड़ा संवाहक और लाभार्थी रहा है।सूचना प्रौद्योगिकी के बिना आधुनिक वैश्वीकरण की कल्पना भी संभव नहीं थी। फाइबर ऑप्टिक केबल्स,सैटेलाइट कम्युनिकेशंस और क्लाउड डेटा केंद्रों ने दुनिया को वास्तव में एक 'वैश्विक गांव' (Global Village) में बदल दिया है। एक समय जो व्यापार या विचार सीमाओं के कारण किसी एक देश तक सीमित रह जाते थे,आज वे कुछ ही मिलीसेकंड्स में पूरी दुनिया में प्रवाहित होते हैं।

इसी डिजिटल और वैश्विक वातावरण के गर्भ से 'डिजिटल चेतना' का उदय होता है। यह मानव मस्तिष्क और डिजिटल दुनिया का एक ऐसा मिला-जुला रुप है,जहाँ हमारी दिनचर्या, निर्णय और आत्म-अभिव्यक्ति लगातार वर्चुअल स्पेस से संचालित होती है। स्मार्टफोन और इंटरनेट केवल हमारी जेब में मौजूद उपकरण नहीं हैं; वे हमारी याददाश्त,संचार और यहाँ तक कि हमारी भावनाओं के विस्तार केंद्र बन चुके हैं। हम अब केवल भौतिक दुनिया के नागरिक नहीं, बल्कि डिजिटल दुनिया के भी सहभागी हैं।

डिजिटल चेतना ने समाज में ज्ञान के लोकतंत्रीकरण को जन्म दिया है। पहले जहाँ सूचना पर कुछ चुनिंदा संस्थानों का एकाधिकार होता था,वहीं आज कोई भी व्यक्ति इंटरनेट के माध्यम से दुनिया भर के पुस्तकालयों,अनुसंधानों और विचारों तक पहुँच सकता है। शिक्षा ऑनलाइन माध्यमों से सुलभ हुई है और दूरदराज के क्षेत्रों के छात्र भी विश्वस्तरीय पाठ्यक्रमों से जुड़ रहे हैं। इसने व्यक्तिगत चेतना को एक वैश्विक चेतना में बदलने का काम किया है।

वैश्वीकरण के इस दौर में अर्थशास्त्र का ढांचा पूरी तरह बदल गया है। ई-कॉमर्स, फिनटेक, ब्लॉकचेन और डिजिटल मुद्रा (क्रिप्टो/सीबीडीसी) ने वैश्विक बाजार को पूरी तरह से एकीकृत कर दिया है। छोटे-छोटे स्टार्टअप्स और स्थानीय कलाकार भी बिना किसी मध्यस्थ के अपनी सेवाओं और उत्पादों को वैश्विक स्तर पर बेच पा रहे हैं। काम करने की संस्कृति भी बदली है; 'वर्क फ्रॉम होम' और 'रिमोट वर्किंग' ने भौगोलिक बाधाओं को समाप्त कर एक नई वैश्विक कार्य-संस्कृति को जन्म दिया है।

हालांकि, तकनीक और वैश्वीकरण के इस अभूतपूर्व संगम के साथ कुछ गंभीर चुनौतियाँ भी उत्पन्न हुई हैं। इनमें से सबसे प्रमुख है—डिजिटल विभाजन।आज भी दुनिया की एक बड़ी आबादी आधुनिक डिजिटल बुनियादी ढांचे से वंचित है। इससे उन लोगों के पिछड़ने का जोखिम बढ़ जाता है जिनके पास तकनीक तक पहुँच नहीं है,जिससे आर्थिक और सामाजिक असमानता और गहरी हो सकती है।

डिजिटल चेतना के विकास का एक दूसरा चिंताजनक पहलू मानवीय रिश्तों और मानसिक स्वास्थ्य पर इसका प्रभाव है। स्क्रीन टाइम में हो रही अत्यधिक वृद्धि और सोशल मीडिया पर निरंतर उपस्थिति ने इंसानों के बीच की वास्तविक, आमने-सामने की संवेदनाओं को कम कर दिया है। अकेलापन, अवसाद और 'FOMO'



(छूट जाने का डर) जैसी नई मनोवैज्ञानिक समस्याएँ इस डिजिटल चेतना के दुष्प्रभाव के रूप में सामने आ रही हैं। हम दूर के लोगों से तो जुड़ रहे हैं, लेकिन पास बैठे अपनों से कटते जा रहे हैं।

निजता और डेटा सुरक्षा का मुद्दा भी इस दौर की एक बड़ी चुनौती है। जब हमारी चेतना और आदतें डिजिटल स्पेस में दर्ज होती हैं, तो व्यक्तिगत डेटा केवल जानकारी नहीं रह जाता, बल्कि एक मूल्यवान संसाधन बन जाता है। वैश्विक टेक कंपनियाँ और एल्गोरिदम हमारे प्राथमिक डेटा के आधार पर हमारी प्राथमिकताओं, विचारों और यहाँ तक कि राजनीतिक प्राथमिकताओं को भी प्रभावित करने की क्षमता रखती हैं। यह स्थिति मानवीय इच्छाशक्ति और स्वतंत्रता पर प्रश्नचिह्न लगाती है।

सांस्कृतिक दृष्टिकोण से, वैश्वीकरण और डिजिटल मीडिया जहाँ दुनिया भर की संस्कृतियों का आदान-प्रदान कर रहे हैं, वहीं एक 'सांस्कृतिक समरूपता' का खतरा भी मंडरा रहा है। स्थानीय भाषाएँ, लोक-परंपराएँ और अद्वितीय सांस्कृतिक पहचानें वैश्विक इंटरनेट संस्कृति के दबाव में धीरे-धीरे लुप्त होने के कगार पर हैं। इंटरनेट पर हावी भाषाओं और जीवन-शैलियों के कारण कई पारंपरिक ज्ञान-प्रणालियाँ हाशिए पर चली गई हैं।

कृत्रिम बुद्धिमत्ता (AI) के इस वर्तमान दौर में डिजिटल चेतना एक नए पड़ाव पर पहुँच चुकी है। अब मशीनें केवल आदेशों का पालन नहीं कर रहीं, बल्कि डेटा के आधार पर सीखने, सोचने और रचना करने का प्रयास भी कर रही हैं। यह मानव चेतना और मशीन बुद्धिमत्ता के बीच की रेखा को धुंधला कर रहा है। स्वचालित प्रणालियों और रोबोटिक्स के कारण रोजगार के पारंपरिक स्वरूप बदल रहे हैं, जिससे नई तकनीकों को सीखने और खुद को लगातार अपग्रेड करने का दबाव बना हुआ है।

इन तमाम चुनौतियों के बावजूद, तकनीक और वैश्वीकरण को न तो खारिज किया जा सकता है और न ही इसकी गति को रोका जा सकता है। आवश्यकता इस बात की है कि हम अपनी डिजिटल चेतना को 'सजग और विवेकपूर्ण' बनाएँ। तकनीक को मानव कल्याण के साधन के रूप में देखा जाना चाहिए, न कि मानव जीवन के नियंत्रक के रूप में। नीति-निर्माताओं को ऐसा समावेशी ढांचा तैयार करना होगा जिससे डिजिटल क्रांति का लाभ समाज के अंतिम व्यक्ति तक पहुँचे।

आने वाले भविष्य में सफलता इस बात पर निर्भर करेगी कि हम तकनीक के साथ कैसा संतुलन बिठाते हैं। हमें एक ऐसी 'डिजिटल नैतिकता' विकसित करनी होगी जो तकनीक के फायदों को अपनाते हुए भी मानवीय संवेदनाओं,निजता, सांस्कृतिक विविधता और मानसिक संतुलन की रक्षा कर सके। जब मानव चेतना और डिजिटल तकनीक का यह सामंजस्य सकारात्मक दिशा में होगा,तभी वैश्वीकरण का यह दौर एक न्यायसंगत, समृद्ध और संवेदनशील विश्व का निर्माण कर पाएगा।



भरोसे का सौदा

भारत में विदेशी 'नेस्ले' का भारतीय उपभोक्ताओं के साथ धोखा!



■ डॉ. मयंक चतुर्वेदी

भारतीय खाद्य सुरक्षा नियामक ने देश के सबसे बड़े और बहुराष्ट्रीय ब्रांड्स में से एक, नेस्ले इंडिया लिमिटेड के खिलाफ शिशु पोषण उत्पादों में खाद्य सुरक्षा मानकों का उल्लंघन करने पर तीन अलग मामले दर्ज किए हैं। यह कानूनी कार्रवाई देश के उन मासूम नवजातों की सेहत से जुड़ी है, जो खुद बोलकर अपनी तकलीफ बयां नहीं कर सकते। वस्तुत: यह उस लंबी फेहरिस्त की एक और कड़ी है, जो समय-समय पर यह सोचने को मजबूर करती है कि क्या भारत जैसे विशाल विकासशील देश को बहुराष्ट्रीय कंपनियां सिर्फ एक बड़ा 'मुनाफा कमाने का बाजार' मानती हैं? 1912 से शुरु हुई ये कंपनी 114 साल से अधिक लंबी यात्रा में आज ₹23,194.95 करोड़ से अधिक का वार्षिक टर्नओवर पर जा पहुंची है।

नेस्ले के व्यापारिक सफर की सबसे बड़ी कड़वी सच्चाई यह है कि वह विकसित यूरोपीय देशों के नागरिकों के लिए उच्च स्वास्थ्य मानक रखती है, जबकि भारत जैसे विकासशील देशों के उपभोक्ताओं के लिए बिल्कुल अलग और हानिकारक नीति अपनाती है। एक स्विस खोजी एनजीओ की रिपोर्ट में यह पहले ही खुलासा हो चुका है कि नेस्ले अपने सबसे प्रसिद्ध शिशु आहार ब्रांड 'सेरेलैक' के निर्माण में दोहरी नीति अपनाता है।

कंपनी जर्मनी, ब्रिटेन, फ्रांस और स्विट्ज़रलैंड जैसे अमीर यूरोपीय देशों में जो सेरेलैक बेचती है, उसमें ऊपर से एक ग्राम भी अतिरिक्त चीनी नहीं मिलाई जाती। इसके विपरीत, वही सेरेलैक जब भारत के माता-पिता अपने छह महीने के मासूम बच्चे के लिए खरीदते हैं, तो उसमें प्रति सर्विंग 2.7 ग्राम से तीन ग्राम तक अतिरिक्त रिफाइंड चीनी छिपी होती है।

विश्व स्वास्थ्य संगठन की गाइडलाइंस कहती हैं कि शिशुओं को दो साल की उम्र तक किसी भी तरह की अतिरिक्त चीनी नहीं दी जानी चाहिए। नेस्ले ने भारतीय बच्चों के स्वाद ग्रंथियों को जानबूझकर चीनी का आदी बनाया ताकि उनके उत्पाद की बिक्री लगातार बढ़ती रहे, भले ही इसके परिणामस्वरुप बच्चों में बचपन का मोटापा, दांतों की सड़न और भविष्य में डायबिटीज का खतरा पैदा हो जाए। यानी कि आज भारत में जिन बच्चों के दांत खराब हो रहे हैं, आप मान सकते हैं कि इसके लिए कहीं न कहीं ये एवं इस जैसी अन्य कंपनियां जिम्मेदार हैं।

भ्रामक मार्केटिंग और ममता का बाजारीकरण

भारत का कानून इन्फेंट मिल्क सब्स्टीट्यूट्स (आईएमएस) एक्ट, 1992 और एफएसएसएआई रेगुलेशन, 2020 नवजात शिशुओं के फॉर्मूला मिल्क के किसी भी प्रकार के व्यावसायिक विज्ञापन या उसे स्तनपान से बेहतर बताने वाले दावों पर पूरी तरह रोक लगाता है। इसके पीछे वैज्ञानिक कारण यह है कि मां का दूध ही शिशु के लिए सर्वोत्तम है। इसके बावजूद, नेस्ले इंडिया ने भारतीय उपभोक्ताओं को गुमराह करने के लिए भ्रामक विज्ञापनों का सहारा लिया।

कंपनी ने अपने नैन एक्सेला प्रो स्टेज-1 उत्पाद पर '5 एचएमओ' और 'व्हे प्रोटीन' के बड़े-बड़े दावे करके माताओं को यह भरोसा दिलाने की कोशिश की कि यह डिब्बाबंद दूध मां के प्राकृतिक दूध जैसा ही शक्तिशाली है। इसी तरह, लैक्टोजन प्रो-1के प्रचार में गैर-प्रमाणित रुप से लिखा गया कि इसका व्हे प्रोटीन "पचने में बेहद आसान" होता है. एक मां अपने बच्चे के स्वास्थ्य के लिए सबसे अच्छी चीज खरीदना चाहती है, किंतु नेस्ले ने अपनी भारी-भरकम और भ्रामक वैज्ञानिक शब्दावली के जरिए भारतीय माताओं के मन में यह भ्रम पैदा किया, जोकि पूरी तरह से गैर-कानूनी प्रचार स्टंट और उपभोक्ता अधिकारों का हनन है।

पोषक तत्वों में कटौती और गुणवत्ता के साथ खिलवाड़

जब बात बच्चों या आम जनता के भोजन की हो, तो शुद्धता के मानकों पर 100 फीसद खरा उतरना अनिवार्य है, लेकिन नेस्ले इंडिया का ट्रैक रिकॉर्ड बताता है कि उसने कई मौकों पर भारतीय मानकों को हल्के में लिया। एफएसएसएआई की प्रयोगशाला जांच रिपोर्ट में नेस्ले इंडिया के एक इन्फेंट मिल्क (फॉलो-अप फॉर्मूला) का सैंपल पूरी तरह मानकों से कम पाया गया है। इस प्रोडक्ट में बच्चों के दिमागी और शारीरिक विकास के लिए आवश्यक विटामिन बायोटिन (बायोटिन यानी विटामिन बी-7) की मात्रा तय भारतीय कानूनी सीमा से काफी कम मिली।

उपभोक्ता डिब्बे पर लिखी न्यूट्रिशन वैल्यू को सच मानकर पूरी कीमत चुकाता है, किंतु डिब्बे के अंदर बंद पाउडर में वह पोषण होता ही नहीं है जिसका वादा किया गया था, वस्तुत: यह सीधे तौर पर भारतीय ग्राहकों की जेब काटने और उनके बच्चों को कुपोषण की ओर धकेलने जैसा धोखा है।

भारत में नेस्ले द्वारा किए गए उपभोक्ताओं के भरोसे के सबसे बड़े कत्ल के रूप में साल 2015 का मैगी विवाद हमेशा याद किया जा सकता है। 1983 में भारत में लॉन्च होने के बाद मैगी ने भारतीय घरों में 'दो-मिनट' के जादुई स्लोगन से अपनी जगह बनाई थी और बाजार के एक बहुत बड़े हिस्से पर कब्जा कर लिया था, पर जब जांच हुई तो सामने आया कि उत्तर प्रदेश के खाद्य सुरक्षा अधिकारियों की जांच में मैगी के सैंपल्स में लेड (शीशा) की मात्रा तय सुरक्षित सीमा (2.5 पीपीएम) से कई गुना अधिक थी।

लेड इंसान के शरीर, विशेषकर बच्चों के लिवर, किडनी और मस्तिष्क विकास के लिए एक खतरनाक न्यूरोटॉक्सिन (धीमा जहर) है। इसके अलावा, मैगी के हर पैकेट पर लिखा होता था- "नो एडेड एमएसजी", मगर प्रयोगशालाओं की जांच में इसमें मोनोसोडियम ग्लूटामेट (एमएसजी) की मौजूदगी पाई गई। इस बड़े धोखे के बाद एफएसएसएआई ने देशव्यापी प्रतिबंध लगाते हुए नेस्ले को 38,000 टन मैगी बाजार से वापस मंगाकर नष्ट करने पर मजबूर किया था और भारत सरकार ने कंपनी के खिलाफ ₹640 करोड़ का मुकदमा भी दायर किया था।

यह आरोप सिर्फ भारतीय नियामकों का नहीं है, स्वयं नेस्ले के वैश्विक नेतृत्व ने इस सच को स्वीकारा है। साल 2021 में नेस्ले के सामने आए आंतरिक दस्तावेज में कंपनी ने खुद कबूल किया कि उसके मुख्यधारा के खाद्य और पेय पोर्टफोलियो (जैसे नूडल्स, चॉकलेट, कन्फेक्शनरी) के 60 फीसद से अधिक उत्पाद स्वास्थ्य की स्थापित अंतरराष्ट्रीय परिभाषाओं पर खरे नहीं उतरते हैं।

कंपनी ने माना था कि उनके कुछ श्रेणियों के उत्पादों को वे चाहे जितनी कोशिश कर लें, कभी भी 'न्यूट्रिशियस या पूरी तरह हेल्दी' नहीं बनाया जा सकता। इसके बावजूद, भारतीय बाजारों में आकर्षक विज्ञापनों के जरिए इन उत्पादों को 'खुशियों का जरिया' और 'बच्चों के टिफिन का सबसे अच्छा साथी' बताकर धड़ल्ले से परोसा जाता है। ऐसे में नेस्ले इंडिया की यात्रा यह साफ दर्शाती है कि कोई भी कॉर्पोरेट ब्रांड तब तक पूरी तरह जवाबदेह नहीं बनता, जब तक कि उपभोक्ता खुद जागरुक न रहे।

वस्तुत: नेस्ले द्वारा भारत में लगातार किए जा रहे ये उल्लंघन इस बात का प्रमाण हैं कि कंपनियां ढीले कानूनी मुकदमों और जुर्माने की राशियों को अपने व्यापार के खर्च का हिस्सा मान चुकी हैं। जब तक उपभोक्ता इन भ्रामक दावों को खुद नकारना शुरु नहीं करेंगे, तब तक मुनाफे का यह खेल हमारी सेहत की कीमत पर खेला जाता रहेगा



कमाऊ दंपतियों की संतान रहित दुनिया





अमल मिश्र

समाज की सबसे पुरानी संस्थाओं में परिवार का स्थान इसलिए महत्वपूर्ण रहा है कि परिवार केवल रक्त-संबंधों का समूह नहीं रहा, वह आर्थिक सहयोग, भावनात्मक सुरक्षा, सामाजिक उत्तराधिकार, संस्कार और पीढ़ियों के बीच संबंध का भी आधार रहा है। आधुनिक जीवन में परिवार का यह पारंपरिक ढाँचा तेजी से बदल रहा है। इसी परिवर्तन के बीच एक शब्द पिछले कुछ वर्षों में विशेष रुप से चर्चा में आया है—'डिंक'। अंग्रेजी के 'ड्युअल इनकम, नो किड्स' अर्थात दोहरी आय और संतानहीन दंपति का संक्षिप्त रूप 'डिंक' आज केवल एक जीवन-शैली का परिचय नहीं रह गया है; यह बदलते शहरी समाज, बदलती पारिवारिक आकांक्षाओं, स्त्री-पुरुष संबंधों, उपभोग संस्कृति और प्रजनन संबंधी निर्णयों में हो रहे गहरे बदलाव का संकेत बनता जा रहा है। हालाँकि 'डिंक' को सीधे 'संतान न चाहने वाले दंपति' का पर्याय मानना उचित नहीं होगा। कुछ दंपति आर्थिक या व्यावसायिक कारणों से कुछ वर्षों तक संतान टालते

हैं, कुछ जैविक अथवा स्वास्थ्य संबंधी परिस्थितियों के कारण संतानहीन रहते हैं और कुछ सचेत रुप से जीवनभर संतान न रखने का निर्णय लेते हैं। इसलिए 'डिंक' एक सामाजिक-आर्थिक श्रेणी है, जबकि 'चाइल्डफ्री' अधिक स्पष्ट रूप से प्रजनन संबंधी स्वैच्छिक निर्णय को व्यक्त करता है। इसी अंतर को समझे बिना इस पूरे परिवर्तन को केवल आधुनिकता, स्वार्थ या परिवार-विरोधी मानसिकता के रुप में देखना उतना ही अधूरा होगा जितना इसे आधुनिक स्वतंत्रता की निर्विवाद उपलब्धि मान लेना।

अमेरिका में प्यू रिसर्च सेंटर के 2025 के विश्लेषण के अनुसार 30 से 49 वर्ष की आयु के विवाहित दंपतियों में 12 प्रतिशत ऐसे थे जिनमें दोनों कमाते हैं और बच्चे नहीं हैं; 2013 में यह अनुपात 8 प्रतिशत था। यह आँकड़ा यह अवश्य बताता है कि 'डिंक' जीवन-शैली अधिक दिखाई देने लगी है, पर यह भी ध्यान रखना चाहिए कि इसके लिए कोई सार्वभौमिक आधिकारिक सांख्यिकीय परिभाषा नहीं है। इसलिए दुनिया के विभिन्न देशों में 'डिंक' की तुलना करते समय हमें प्रत्यक्ष डिंक आँकड़ों की जगह विवाहित दंपतियों की संतानहीनता, प्रजनन दर, विवाह की आयु और घरेलू संरचना जैसे संकेतकों का सहारा लेना पड़ता है। इस परिवर्तन के पीछे सबसे महत्वपूर्ण कारकों में शहरीकरण, शिक्षा, महिलाओं की बढ़ती आर्थिक भागीदारी, आवास की बढ़ती लागत, बच्चों की शिक्षा और पालन-पोषण का बढ़ता खर्च तथा जीवन के अर्थ और सफलता की बदलती परिभाषा शामिल हैं। आर्थिक सहयोग और विकास संगठन के अनुसार उसके सदस्य देशों में कुल प्रजनन दर 2022 में औसतन 1.5 तक पहुँच चुकी थी, जबकि प्रतिस्थापन स्तर लगभग 2.1 माना जाता है। इसी अवधि में पहली संतान के समय माताओं की औसत आयु भी बढ़ी है। संगठन ने आवास की बढ़ती लागत, रोजगार की असुरक्षा, बच्चों की देखभाल की लागत और बदलती सामाजिक आकांक्षाओं को परिवार निर्माण में महत्वपूर्ण कारकों के रूप में रेखांकित किया है।

यहाँ 'डिंक' जीवन-शैली का पहला सकारात्मक पक्ष सामने आता है। दो कमाने वाले और बिना बच्चों वाले दंपति के पास सामान्यतः आय का बड़ा हिस्सा आवास, यात्रा, शिक्षा, स्वास्थ्य, कला, मनोरंजन, निवेश और व्यक्तिगत रुचियों पर खर्च करने की संभावना होती है। करियर में अधिक समय देना, दूसरे शहर या देश में अवसर स्वीकार करना, उद्यमिता का जोखिम उठाना और व्यक्तिगत रुचियों के लिए समय निकालना अपेक्षाकृत आसान हो सकता है। विशेष रुप से महिलाओं के लिए इसका अर्थ यह भी हो सकता है कि विवाह के बाद उनकी पेशेवर पहचान मातृत्व की अनिवार्यता में विलीन न हो। मनोवैज्ञानिक दृष्टि से भी तस्वीर एकरेखीय नहीं है। 2026 में प्रकाशित एक अध्ययन में तुर्किये की विवाहित महिलाओं की तुलना में स्वेच्छा से संतानहीन महिलाओं और माताओं के बीच वैवाहिक तथा जीवन-संतुष्टि में कोई महत्वपूर्ण सांख्यिकीय अंतर नहीं पाया गया। अध्ययन ने संकेत दिया कि संतुष्टि केवल इस बात से निर्धारित नहीं होती कि व्यक्ति माता है या नहीं, बल्कि उस सामाजिक वातावरण से भी प्रभावित होती है जिसमें वह अपना जीवन जीता है। भारत पर उपलब्ध हालिया समीक्षा भी बताती है कि स्वैच्छिक संतानहीनता के पीछे जीवन-शैली, आर्थिक परिस्थितियाँ, लैंगिक स्वायत्तता और पर्यावरण संबंधी चिंताएँ जैसे विविध कारण हैं तथा कई लोग उच्च जीवन-संतुष्टि और संबंधों में संतुष्टि भी चाहते हैं।

इसका दूसरा पक्ष भी उतना ही महत्वपूर्ण है। संतान न होना अपने आप में मानसिक समस्या नहीं है, लेकिन जब निर्णय सामाजिक दबाव, अकेलेपन, संबंधों में असहमति या भविष्य के प्रति अनिश्चितता से जुड़ा हो तो परिस्थितियाँ बदल सकती हैं। विशेष रुप से तब, जब पति-पत्नी में से एक संतान चाहता हो और दूसरा नहीं। प्रारंभ में आर्थिक स्वतंत्रता और व्यक्तिगत स्वतंत्रता का अनुभव देने वाला निर्णय बाद के वर्षों में संबंधों के भीतर तनाव का कारण बन सकता है। इसलिए मनोवैज्ञानिक दृष्टि से महत्वपूर्ण प्रश्न यह नहीं है कि 'डिंक' जीवन-शैली अच्छी है या बुरी, बल्कि यह है कि निर्णय दोनों व्यक्तियों का स्वतंत्र, सहमति-आधारित और दीर्घकालिक रुप से विचार किया हुआ निर्णय है या नहीं। समस्या का एक और गहरा आयाम वृद्धावस्था से जुड़ा है। युवा अवस्था में दो कमाने वाले व्यक्तियों का छोटा परिवार अत्यंत सुविधाजनक दिखाई दे सकता है, लेकिन जीवन का गणित 30 वर्ष और 70 वर्ष की आयु में समान नहीं रहता। जब माता-पिता वृद्ध होते हैं, भाई-बहन अलग-अलग शहरों में रहते हैं और मित्र भी अपने-अपने परिवारों में व्यस्त होते हैं, तब सामाजिक देखभाल का प्रश्न सामने आता है। भारत के संदर्भ में हालिया शोध में संतानहीनता और मध्य तथा वृद्धावस्था में जीवन-संतुष्टि तथा अवसाद संबंधी लक्षणों के बीच संबंध पाया गया है; साथ ही रहने की व्यवस्था और आर्थिक सुरक्षा को महत्वपूर्ण मध्यस्थ कारकों के रुप में चिन्हित किया गया है। इसका अर्थ यह नहीं कि हर संतानहीन व्यक्ति वृद्धावस्था में अकेला या असंतुष्ट होगा; इसका अर्थ केवल इतना है कि परिवार द्वारा पारंपरिक रुप से निभाई जाने वाली देखभाल की भूमिका का विकल्प पहले से तैयार करना होगा।

यही कारण है कि जापान, दक्षिण कोरिया और सिंगापुर जैसे समाज 'डिंक' बहस को समझने के लिए विशेष रुप से महत्वपूर्ण हैं। इन देशों में कम होती प्रजनन दर को केवल इस आधार पर नहीं समझा जा सकता कि लोग अब बच्चे नहीं चाहते। इसके पीछे विवाह की बढ़ती आयु, विवाह के प्रति बदलता दृष्टिकोण, करियर को प्राथमिकता, महँगा आवास, बच्चों की शिक्षा और पालन-पोषण की बढ़ती लागत, लंबे कार्य घंटे तथा स्त्री-पुरुष की बदलती सामाजिक भूमिकाएँ एक-दूसरे से जुड़ी हुई हैं। यानी कई बार संतान न रखने या संतान को टालने का निर्णय केवल व्यक्तिगत पसंद नहीं होता, उसके पीछे आर्थिक और सामाजिक परिस्थितियाँ भी काम करती हैं। इसे जापान के उदाहरण से समझा जा सकता है। वहाँ विवाह की आयु लगातार बढ़ी है और विवाह करने की इच्छा रखने वाले युवाओं का अनुपात भी घटा है। 2025 के जापानी राष्ट्रीय प्रजनन सर्वेक्षण में 18–34 वर्ष के अविवाहित पुरुषों में 75.1 प्रतिशत और महिलाओं में 77.8 प्रतिशत ने भविष्य में विवाह करने की इच्छा व्यक्त की। इसी सर्वेक्षण में वांछित बच्चों की औसत संख्या पुरुषों में 1.64 और महिलाओं में 1.70 रह गई। विवाहित दंपतियों में 15–19 वर्ष के वैवाहिक जीवन के बाद लगभग 10 प्रतिशत के कोई बच्चे नहीं थे और लगभग एक-तिहाई दंपतियों के वास्तविक बच्चों की संख्या विवाह के समय की अपेक्षा से कम रही। इसका अर्थ यह नहीं कि जापान के सभी युवा 'डिंक' जीवन-शैली अपना रहे हैं; बल्कि यह बताता है कि विवाह और संतान के संबंध में नई पीढ़ी की आकांक्षाएँ बदल रही हैं और आर्थिक, पेशेवर तथा सामाजिक परिस्थितियाँ उन आकांक्षाओं को प्रभावित कर रही हैं। यही वह व्यापक सामाजिक परिवर्तन है, जिसके एक हिस्से के रूप में 'डिंक' जीवन-शैली को समझना चाहिए। टोक्यो जैसे महानगर में यह परिवर्तन और स्पष्ट दिखाई देता है। टोक्यो महानगर सरकार के अनुसार वहाँ देर से विवाह, बढ़ती अविवाहित आबादी और बच्चों की संख्या में कमी लंबे समय से प्रमुख जनसांख्यिकीय प्रश्न रहे हैं। यहाँ महानगर केवल भौगोलिक इकाई नहीं है; वह जीवन-शैली का ऐसा वातावरण है जहाँ समय महँगा है, आवास महँगा है, पेशेवर प्रतिस्पर्धा तीव्र है और व्यक्तिगत स्वतंत्रता का मूल्य अधिक है। महानगर में परिवार बनाने की लागत केवल रुपये या येन में नहीं मापी जाती; उसमें समय, आवागमन, करियर का अवसर, निजी स्थान और मानसिक ऊर्जा भी शामिल होती है।

दक्षिण कोरिया में सियोल इसका दूसरा

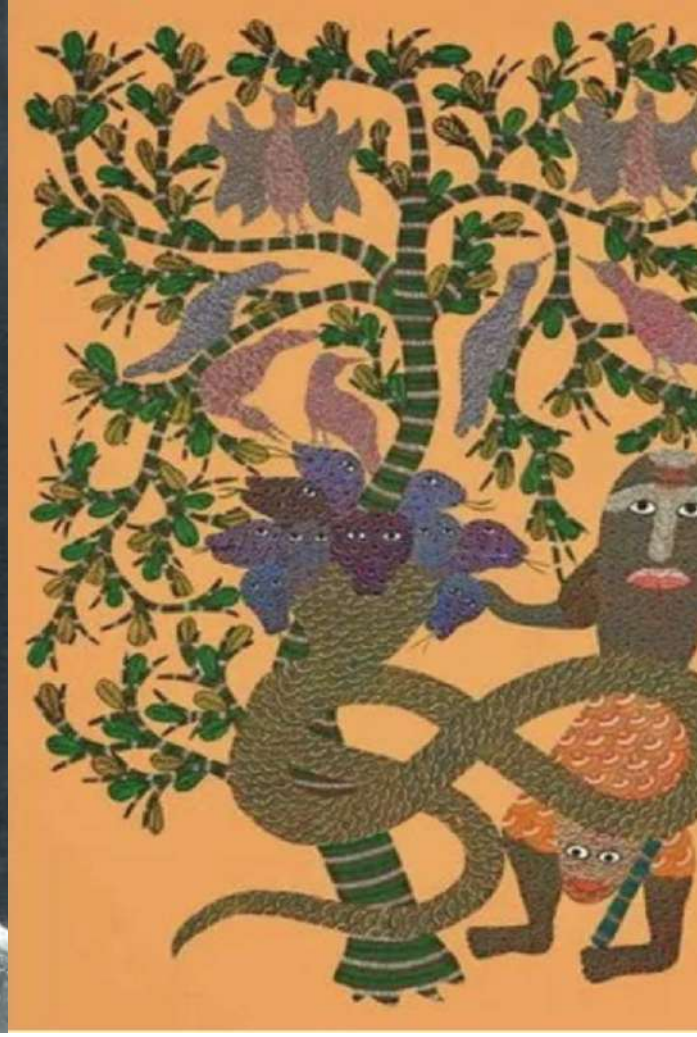
उदाहरण प्रस्तुत करता है। वहाँ 'डिंक' दंपतियों पर अध्ययन में ऐसे पेशेवर दंपतियों के उदाहरण सामने आए हैं जिन्होंने आर्थिक स्वतंत्रता और अपेक्षाकृत मुक्त जीवन को संतान से अधिक प्राथमिकता दी। लेकिन कोरिया का अनुभव यह भी बताता है कि जब शिक्षा, आवास और कार्य-संस्कृति परिवार निर्माण को अत्यधिक महँगा बना दें, तब व्यक्तिगत चुनाव और संरचनात्मक दबाव के बीच अंतर करना कठिन हो जाता है। किसी दंपति का 'हम बच्चे नहीं चाहते' कहना और 'हम बच्चे चाहते हैं, लेकिन वर्तमान व्यवस्था में उन्हें पालना कठिन है'—इन दोनों कथनों के सामाजिक अर्थ अलग हैं। सिंगापुर में भी परिवार छोटा होने की प्रवृत्ति स्पष्ट है। वहाँ 2024 में 40–49 वर्ष की आयु की नागरिक विवाहित महिलाओं में बिना बच्चों वाली महिलाओं का हिस्सा 14.4 प्रतिशत था, जो 2004 के 6.7 प्रतिशत से अधिक है। इसी अवधि में 3 या उससे अधिक बच्चों वाली महिलाओं का हिस्सा 34.5 प्रतिशत से घटकर 20.6 प्रतिशत हुआ। सिंगापुर सरकार स्वयं कम प्रजनन को युवा पीढ़ी की बदलती प्राथमिकताओं, विवाह और मातृत्व को टालने, बच्चों की परवरिश की लागत तथा काम और परिवार के संतुलन की कठिनाइयों से जोड़ती है। 2025 में वहाँ कुल प्रजनन दर 0.87 तक पहुँच गई और बच्चों वाले विवाहित दंपति-आधारित परिवारों का हिस्सा भी पिछले दशक में घटा है।

इन देशों के अनुभव से एक बात तो स्पष्ट हो जाती है कि —'डिंक' केवल उपभोक्तावादी विकल्प नहीं है। कई बार वह ऐसी आर्थिक और सामाजिक व्यवस्था की प्रतिक्रिया भी होता है जिसमें बच्चे का अर्थ केवल प्रेम और परिवार नहीं, बल्कि अत्यधिक आर्थिक निवेश, समय और करियर संबंधी अवसर-लागत भी हो जाता है। विशेष रूप से महानगरों में बच्चे का पालन-पोषण शिक्षा, स्वास्थ्य, आवास, परिवहन और निजी समय के सम्मिलित खर्च में बदल जाता है। जब दोनों पति-पत्नी उच्च शिक्षा प्राप्त और पेशेवर हों, तब संतान के कारण किसी एक के करियर में रुकावट आने की संभावना भी निर्णय को प्रभावित कर सकती है। आर्थिक सहयोग और विकास संगठन ने भी पाया है कि आवास की लागत और श्रम-बाजार की असुरक्षा कम प्रजनन के साथ नकारात्मक रूप से जुड़ी हैं। परंतु यहाँ बाजार और संस्कृति के संबंध को समझना आवश्यक है। 'डिंक' संस्कृति ने एक नए उपभोक्ता वर्ग को भी जन्म दिया है। दोहरी आय और बच्चों की अनुपस्थिति का अर्थ है कि घरेलू आय का बड़ा भाग यात्रा, रेस्तराँ, पालतू पशुओं, फिटनेस, मनोरंजन, तकनीक, बेहतर आवास और अनुभव आधारित उपभोग पर खर्च हो सकता है। सामाजिक माध्यमों ने इस जीवन-शैली को दृश्य रूप दिया है। अब परिवार की सफलता का चित्र केवल बच्चों, बड़े घर और संयुक्त परिवार की तस्वीर नहीं है; उसके स्थान पर दो पेशेवर व्यक्तियों, यात्राओं, पालतू पशु, स्वतंत्र जीवन और आर्थिक उपलब्धियों की छवियाँ भी आ गई हैं। अमेरिका में 'डिंक' शब्द की लोकप्रियता बढ़ने में सामाजिक माध्यमों पर ऐसे जीवन-शैली संबंधी वीडियो की भूमिका भी दर्ज की गई है।

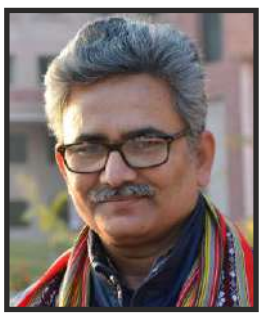
यहीं सांस्कृतिक प्रश्न सबसे जटिल हो जाता है। भारतीय समाज में विवाह लंबे समय तक केवल दो व्यक्तियों का संबंध नहीं रहा; वह दो परिवारों, वंश, सामाजिक उत्तराधिकार और पीढ़ियों के बीच संबंध का संस्थागत रूप रहा है। इसलिए 'दो कमाने वाले, बिना बच्चे' का मॉडल पारंपरिक भारतीय पारिवारिक कल्पना के सामने एक प्रश्न खड़ा करता है—क्या परिवार का उद्देश्य केवल वंश आगे बढ़ाना है या दो व्यक्तियों की भावनात्मक साझेदारी भी अपने आप में परिवार की पर्याप्त इकाई है? इस प्रश्न का उत्तर किसी एक सामाजिक सूत्र में नहीं दिया जा सकता। भारत में संतानहीन दंपतियों पर सामाजिक दबाव अभी भी पश्चिमी महानगरों की तुलना में अधिक हो सकता है। हालिया भारतीय साहित्य में सांस्कृतिक, धार्मिक और पारिवारिक अपेक्षाओं से जुड़े कलंक का उल्लेख मिलता है। साथ ही यह भी रेखांकित किया गया है कि भारत की नीतिगत और संस्थागत व्यवस्थाएँ अभी भी बड़े पैमाने पर विवाह, मातृत्व और पारंपरिक परिवार को केंद्र में रखकर निर्मित हैं। लेकिन भारतीय संदर्भ में एक और सावधानी आवश्यक है। महानगरों में दिखाई देने वाला 'डिंक' पूरे भारत का प्रतिनिधि नहीं है। मुंबई, दिल्ली, बेंगलुरु, हैदराबाद, पुणे, चेन्नई, गुरुग्राम और नोएडा जैसे उच्च आय, उच्च शिक्षा और पेशेवर रोजगार वाले महानगरीय क्षेत्रों में इसका सांस्कृतिक प्रभाव छोटे शहरों और ग्रामीण क्षेत्रों की तुलना में अधिक दिखाई दे सकता है, लेकिन इसे पूरे भारतीय समाज की सामान्य प्रवृत्ति मानना जल्दबाजी होगी। भारत में परिवार अभी भी सामाजिक सुरक्षा की सबसे महत्वपूर्ण संस्थाओं में से एक है और आर्थिक रूप से कमजोर वर्गों के लिए बच्चों की भूमिका केवल भावनात्मक नहीं, भविष्य की पारिवारिक सुरक्षा से भी जुड़ी होती है। इसलिए 'डिंक' के प्रश्न को केवल जनसंख्या घटने के प्रश्न में सीमित करना भी ठीक नहीं होगा। इसका एक सकारात्मक पक्ष यह है कि यह व्यक्ति को अपने जीवन के बारे में निर्णय लेने की स्वतंत्रता देता है। यह महिलाओं की स्वायत्तता, विवाह में समान भागीदारी और परिवार के भीतर आर्थिक साझेदारी को बढ़ावा दे सकता है। यह उन दंपतियों को सामाजिक स्वीकृति की दिशा में ले जा सकता है जो सचेत रूप से संतान नहीं चाहते। लेकिन इसका दूसरा पक्ष यह है कि यदि समाज में यह प्रवृत्ति व्यापक होती जाती है तो वृद्ध होती आबादी, श्रमशक्ति की कमी, पेंशन और स्वास्थ्य व्यवस्था पर बढ़ता दबाव तथा देखभाल की नई संस्थाओं की आवश्यकता सामने आएगी। आर्थिक सहयोग और विकास संगठन ने भी कम प्रजनन वाले समाजों के सामने वृद्धावस्था व्यय बढ़ने और कामकाजी आयु की आबादी घटने जैसी चुनौतियों को रेखांकित किया है।

भविष्य में शायद सबसे बड़ा प्रश्न यह नहीं होगा कि कितने लोग 'डिंक' हैं, बल्कि यह होगा कि समाज ऐसे लोगों के साथ कैसा व्यवहार करता है और ऐसी जीवन-व्यवस्था के लिए कैसी संस्थाएँ विकसित करता है। यदि परिवार की भूमिका कम होती है तो उसके स्थान पर सामुदायिक देखभाल, दीर्घकालिक स्वास्थ्य बीमा, वृद्धावस्था आवास, मानसिक स्वास्थ्य सेवाएँ, मित्रता और पड़ोस आधारित सामाजिक नेटवर्क तथा सार्वजनिक देखभाल संस्थाओं को मजबूत करना होगा। दूसरी ओर यदि कोई दंपती बच्चे चाहता है, लेकिन आवास, रोजगार, शिक्षा और देखभाल की लागत उसे रोकती है, तो केवल आर्थिक प्रोत्साहन पर्याप्त नहीं होगा। काम और परिवार के बीच वास्तविक संतुलन, पुरुषों की देखभाल में समान भागीदारी, गुणवत्तापूर्ण बाल-देखभाल और सस्ती आवास व्यवस्था भी आवश्यक होगी। यही कारण है कि कुछ ऐसे देश भी, जहाँ परिवार समर्थक नीतियों पर पर्याप्त सार्वजनिक खर्च होता है, प्रजनन दर में अपेक्षित सुधार नहीं ला पाए हैं। इसलिए 'डिंक' को न तो नैतिक पतन का प्रतीक बनाया जाना चाहिए और न आधुनिक जीवन की अंतिम उपलब्धि का। परिवार की गरिमा केवल बच्चों की संख्या से तय नहीं होती और व्यक्ति की सार्थकता केवल संतान होने से सिद्ध नहीं होती। उसी तरह आर्थिक स्वतंत्रता और निजी सुख भी जीवन की संपूर्णता के पर्याय नहीं हैं। मनुष्य का जीवन व्यक्तिगत स्वतंत्रता और सामाजिक उत्तरदायित्व—दोनों के बीच आकार लेता है। और यदि परिवार का अर्थ बदले तो समाज को भी उसके साथ बदलना होगा। आने वाले दशकों में शायद हमें 'परिवार बनाम व्यक्ति' की बहस से आगे बढ़कर ऐसे समाज की कल्पना करनी होगी जहाँ व्यक्ति की स्वायत्तता, दांपत्य की समानता, बच्चों का अधिकार, वृद्धों की गरिमा और समाज की जनसांख्यिकीय आवश्यकता—इन सभी को एक साथ देखा जा सके।





कला के बाज़ार में जनगण कलम की धमक



अवधेश मिश्र

किसी चित्र की कीमत जब करोड़ों में पहुँचती है तो वह केवल कला-जगत की खबर नहीं रह जाती। उसके साथ कला की सामाजिक स्वीकृति, संग्रहकर्ताओं की बदलती रुचि, सांस्कृतिक स्मृति, बाजार की दिशा और कलाकार की पृष्ठभूमि जैसे अनेक प्रश्न भी सामने आते हैं। हाल में मुंबई की पुन्दोले आर्ट गैलरी की नीलामी में जनगढ़ सिंह श्याम की एक पेंटिंग का 18 करोड़ रुपये की एक अच्छी कीमत पर बिकना इसी अर्थ में भारतीय कला-बाजार की एक महत्वपूर्ण घटना है। जिस कृति का अनुमान 4 से 6 करोड़ रुपये लगाया गया था, वह बोली के दौरान 18 करोड़ रुपये तक पहुँची। यह केवल अनुमान से तीन गुना अधिक कीमत का मामला नहीं है, यह उस कला-दृष्टि में बदलाव का संकेत भी है जिसमें भारतीय कला की मुख्यधारा और आदिवासी कला के बीच खींची गई पुरानी सीमाएँ धीरे-धीरे धुंधली हो रही हैं। जनगढ़ सिंह श्याम का महत्व इस नीलामी से बहुत पहले स्थापित हो चुका था। मध्य प्रदेश के पाटनगढ़ से निकलने वाले इस कलाकार ने गोंड समुदाय के मौखिक इतिहास और परंपरा, मिथकों, प्रकृति, पशु-पक्षियों और लोक-स्मृति को ऐसी दृश्य भाषा दी, जिसमें परंपरा केवल संरक्षित नहीं रही, वह नए रूप में सृजित हुई। जगदीश स्वामीनाथन के संपर्क में आने के बाद उनकी कला ने मिट्टी और दीवार से कागज और कैनवास तक की यात्रा की। भारत भवन, भोपाल ने इस यात्रा को व्यापक मंच दिया और आगे चलकर जिस शैली को 'जनगढ़ कलम' कहा गया, उसने



भारतीय कला के परिदृश्य में अपनी अलग पहचान बनाई।

जनगढ़ की कला को केवल 'आदिवासी कला' कहकर सीमित कर देना उनकी रचनात्मक उपलब्धि को छोटा करना होगा। उनकी चित्रभाषा में प्रकृति है, लेकिन वह केवल प्रकृति का चित्रण नहीं है; उसमें यादें, मिथक, संगीत, विश्वास और सामुदायिक चेतना एक-दूसरे में गुंथी हुई दिखाई देती है। वृक्ष उनके यहाँ केवल वृक्ष नहीं रहता, पशु केवल पशु नहीं रहता और पक्षी केवल पक्षी नहीं रहता। वे एक ऐसी दृश्य संरचना का हिस्सा बन जाते हैं जिसमें मनुष्य और प्रकृति के बीच आधुनिक सभ्यता द्वारा बनाई गई दूरी दिखाई नहीं देती। उनकी रेखाओं और सूक्ष्म पैटर्न में एक ऐसी लय है जो उनके संगीतबोध और उनकी सांस्कृतिक यादों से जुड़ती है। इसीलिए जनगढ़ की कला को समझने के लिए केवल उसके बाजार मूल्य को देखना पर्याप्त नहीं है। फिर भी कला-बाजार की अपनी भाषा होती है और उसकी उपेक्षा नहीं की जा सकती। बाजार किसी कलाकार को केवल उसकी कलात्मक गुणवत्ता के आधार पर कीमत नहीं देता। कलाकार की उपलब्ध कृतियों की संख्या, कृति का आकार, माध्यम, कालखंड, विषय, प्रदर्शनी इतिहास, प्रोवेनेंस, संग्रहकर्ताओं की रुचि, संस्थागत मान्यता और नीलामी में उस समय मौजूद प्रतिस्पर्धा—ये सभी कारक मिलकर किसी कृति की कीमत बनाते हैं। पुन्दोले की नीलामी में जनगढ़ की जिस 1999 की कृति ने 18 करोड़ रुपये की बोली हासिल की, वह सामान्य रूप से बड़ी कृति थी—लगभग 91 × 69 इंच—और नीलामी में पहली बार प्रस्तुत हुई थी। उसके विषय और रंग-संयोजन के साथ उसका आकार भी उसकी बाजार-आकर्षण क्षमता का महत्वपूर्ण हिस्सा था।

इस घटना की सबसे दिलचस्प बात यह है कि कुछ ही दिन पहले सैफरनआर्ट की नीलामी में जनगढ़ की दूसरी 1999 की कृति 'बेल मुखोटा' 2.88 करोड़ रुपये में बिकी थी। यानी कुछ ही दिनों के अंतराल में एक ही कलाकार की दो बड़ी कृतियों ने बाजार में असाधारण रुचि पैदा की। फिर भी भारतीय कला-बाजार के शीर्ष पर अभी भी आधुनिक भारतीय कला के वे कलाकार दिखाई देते हैं जिन्होंने स्वतंत्र भारत की आधुनिक कला-भाषा को निर्मित किया। 2025 के वैश्विक नीलामी आंकड़ों में एम. एफ. हुसैन, तैयब मेहता, एफ. एन. सूजा, एस. एच. रजा, वासुदेव एस. गायतोंडे, जहांगीर सबावाला, जगदीश स्वामीनाथन और कृष्ण खन्ना जैसे नाम प्रमुख रहे। एम. एफ. हुसैन का 2025 का नीलामी कारोबार लगभग 56.28 मिलियन डॉलर दर्ज किया गया, जबकि तैयब मेहता और सूजा भी अत्यंत ऊँचे स्तर पर रहे। लेकिन भारतीय कला-बाजार की नई कहानी केवल हुसैन, रजा, गायतोंडे या सूजा तक सीमित नहीं रह गई है। राजा रवि वर्मा की 'यशोदा एंड कृष्ण' कृति का 2026 में 167.2 करोड़ रुपये में बिकना, और अब जनगढ़ सिंह श्याम की कृति का 18 करोड़ रुपये तक पहुँचना, दो अलग-अलग दिशाओं से भारतीय कला की बदलती बाजार-स्वीकृति को सामने रखते हैं। एक ओर भारतीय आधुनिकता के स्थापित नामों का मूल्य लगातार बढ़ रहा है, दूसरी ओर उन कलाकारों की ओर भी ध्यान जा रहा है जिनकी कलाभाषा भारतीय समाज की उन परंपराओं से आती है जिन्हें लंबे समय तक मुख्यधारा की कला-इतिहास लेखन में हाशिए पर रखा गया। यहीं से जनगढ़ सिंह श्याम की 18 करोड़ रुपये की बिक्री का वास्तविक महत्व सामने आता है। यह कहना जल्दबाजी होगी कि इस एक नीलामी ने आदिवासी कला के पूरे बाजार को बदल दिया है। एक कलाकार की एक असाधारण कृति की कीमत से पूरे क्षेत्र की आर्थिक स्थिति का निष्कर्ष नहीं निकाला जा सकता। लेकिन यह घटना निश्चित रूप से उस परिवर्तन को रेखांकित करती है जिसमें संग्रहकर्ता अब भारतीय कला की तलाश केवल स्थापित आधुनिकतावादी नामों में नहीं कर रहे हैं। जनगढ़ के मामले में यह परिवर्तन और भी महत्वपूर्ण है क्योंकि उनके जीवनकाल और मृत्यु के बाद के वर्षों में उनकी कला की कीमतों में लंबी अवधि तक वह ऊँचाई नहीं थी जो अब दिखाई दे रही है। 2024-25 के एक भारतीय कला-बाजार अध्ययन में जनगढ़ की एक कृति 2.15 करोड़ रुपये में शीर्ष आदिवासी कला बिक्री के रूप में दर्ज थी; अब 18 करोड़ रुपये की नीलामी उस पुराने स्तर की तुलना में एक बड़ा बदलाव दर्शाती है। इस परिवर्तन को केवल निवेश की दृष्टि से देखना भी उचित नहीं होगा। कला जब संग्रहणीय वस्तु बनती है तो उसका आर्थिक मूल्य बढ़ता है, लेकिन उसी प्रक्रिया में उसके सांस्कृतिक अर्थ के बदल जाने का खतरा भी रहता है। बाजार कभी-कभी किसी कलाकार की जटिल कलाभाषा को एक आसान पहचान में बदल देता है—'गोंड', 'आदिवासी', 'लोक', 'जनजातीय' जैसे शब्द उसके सामने लगा दिए जाते हैं और उसका नवाचार, प्रयोगशीलता तथा वैचारिक स्वतंत्रता पीछे छूट सकती है। जनगढ़ के साथ ऐसा न हो, यह भारतीय कला-इतिहास, संग्रहालयों, कला-आलोचना और बाजार—सभी की जिम्मेदारी है।

जनगढ़ की उपलब्धि इसलिए महत्वपूर्ण है कि उन्होंने परंपरा को संग्रहालय में रखी हुई वस्तु की तरह नहीं देखा। उन्होंने परंपरा को प्राणवान अनुभव की तरह बरता। उनकी चित्रकला में पुरखों की स्मृति आधुनिक माध्यम से संवाद करती है। मिट्टी की दीवार से कैनवास तक की यात्रा केवल माध्यम परिवर्तन नहीं थी; वह भारतीय कला के भीतर एक बड़े संवाद की शुरुआत थी—क्या आधुनिकता का अर्थ केवल पश्चिम से आए कला-मूल्यों को अपनाना है, या भारतीय समाज की अपनी दृश्य और सांस्कृतिक स्मृतियों से भी आधुनिक कला की नई भाषा निर्मित हो सकती है? जनगढ़ का उत्तर उनकी पूरी कला-यात्रा में दिखाई देता है। यही कारण है कि यह नीलामी भारतीय कला के सामने एक और गंभीर प्रश्न रखती है। क्या बाजार अब उस कला को पहचान रहा है जिसे कला-इतिहास ने देर से पहचाना? या बाजार स्वयं नई दुर्लभता और नई संग्रहणीयता की तलाश में है? दोनों प्रक्रियाएँ एक साथ चल सकती हैं। बाजार किसी कलाकार की दृश्यता बढ़ा सकता है, उसके संरक्षण और शोध को प्रोत्साहित कर सकता है, संग्रहालयों में उसकी उपस्थिति बढ़ा सकता है; लेकिन बाजार का मूल्यांकन कला का अंतिम मूल्यांकन नहीं होता। किसी चित्र की कीमत और उसकी कलात्मक महत्ता एक-दूसरे से संबंधित हो सकती हैं, पर दोनों समानार्थी नहीं हैं।

भारत में कला-संग्रह की संस्कृति भी धीरे-धीरे व्यापक हो रही है। नए संग्रहकर्ता आधुनिक कला के साथ समकालीन, लोक, आदिवासी और क्षेत्रीय कलाभाषाओं की ओर देख रहे हैं। प्रवासी भारतीय समुदाय की क्रय-क्षमता, भारत में बढ़ती संपन्नता, नीलामी संस्थाओं का विस्तार, डिजिटल कैटलॉग, अंतरराष्ट्रीय संग्रहालयों की रुचि और कला को पीढ़ियों तक सुरक्षित रहने वाली सांस्कृतिक संपदा के रूप में देखने की प्रवृत्ति इस बाजार को नया आकार दे रही है। हालिया बाजार विश्लेषण भी संकेत करते हैं कि बिक्री का बड़ा हिस्सा कुछ प्रमुख कलाकारों और चुनिंदा उच्च-मूल्य कृतियों में केंद्रित है। इसलिए जनगढ़ सिंह श्याम की 18 करोड़ रुपये की कृति को केवल 'महँगी पेंटिंग' के रूप में देखना उस घटना को छोटा कर देना होगा। यह भारतीय कला की बदलती सामाजिक यादों एवं मूल्यों का भी एक अवसर है। जिस कलाकार की कला कभी गाँव की दीवारों, लोककथाओं और सामुदायिक स्मृतियों से निकलकर आधुनिक कला की दुनिया में पहुँची थी, उसकी एक कृति आज करोड़ों रुपये की बोली का केंद्र बनती है। यह यात्रा भारतीय कला के उस लंबे रास्ते की याद दिलाती है जिसमें लोक और शास्त्र, परंपरा और आधुनिकता, गाँव और महानगर, स्मृति और बाजार लगातार एक-दूसरे से संवाद करते रहे हैं। परंतु इस उत्सव के साथ आत्ममंथन भी आवश्यक है। यदि किसी कलाकार की कृति इस कीमत तक पहुँचती है, तो क्या उसके समुदाय की कला-परंपरा को भी उतनी ही संस्थागत प्रतिष्ठा मिलती है? क्या हमारे विश्वविद्यालयों के कला इतिहास में जनजातीय और लोक कलाकारों का अध्ययन उसी गंभीरता से होता है जिस गंभीरता से आधुनिक भारतीय कला के स्थापित नामों का होता है? क्या हमारे संग्रहालयों में इन कलाकारों की कृतियों का पर्याप्त संरक्षण और दस्तावेजीकरण है? क्या कला-विद्यार्थियों को यह समझाया जाता है कि आधुनिकता की अनेक धाराएँ भारतीय समाज के भीतर से निकली हैं?

शायद जनगढ़ सिंह श्याम की 18 करोड़ रुपये की पेंटिंग का सबसे बड़ा प्रश्न यही है। बाजार ने एक कीमत तय की है; अब कला-इतिहास को उसका अर्थ तय करना है। कीमत आज की नीलामी में बदल सकती है, कल कोई दूसरी कृति नया रिकॉर्ड बना सकती है, लेकिन एक कलाकार की वास्तविक उपस्थिति समय के साथ उसके काम की व्याख्या, संरक्षण और प्रभाव से निर्धारित होती है। जनगढ़ ने जो दृश्य भाषा निर्मित की, वह किसी एक नीलामी की बोली से बड़ी है। यह कीमत इसलिए उल्लेखनीय है कि उसने दुनिया का ध्यान उस भाषा की ओर खींचा है; अब आवश्यकता इस बात की है कि उस भाषा को केवल बाजार में नहीं, भारतीय कला की सामूहिक स्मृति में भी उसका उचित स्थान मिले। भारतीय कला-बाजार की अगली यात्रा शायद इसी संतुलन की परीक्षा होगी—जहाँ कला की कीमत बढ़े, पर कला का अर्थ कम न हो; जहाँ संग्रहकर्ता बढ़ें, पर कला केवल निवेश की वस्तु न बन जाए; जहाँ आदिवासी और लोक कला बाजार में आए, पर अपनी सांस्कृतिक अस्मिता खोकर नहीं; और जहाँ किसी कलाकार की नीलामी कीमत उसके सृजनात्मक मूल्य को समझने की शुरुआत बने, उसका अंतिम निष्कर्ष नहीं। जनगढ़ सिंह श्याम का यह चित्र इसी बड़े बदलाव का एक चमकदार, किंतु गंभीर, दस्तक है।

‘27 में 27 हजार’ बूथ पर बिछ रही 2027 की सियासी बिसात





■ सौरभ भट्ट

उत्तर प्रदेश की सियासत में 2027 का विधानसभा चुनाव भले अभी सामने न आया हो, लेकिन उसकी बिसात बिछनी शुरू हो गई है। राजनीतिक दलों के लिए अब लखनऊ की बड़ी रैलियों से ज्यादा अहमियत गांव की चौपाल, मोहल्ले की बैठक और मतदान केंद्र के आसपास सक्रिय कार्यकर्ता की हो गई है। इसी बदलते चुनावी गणित के बीच समाजवादी पार्टी ने अपना फोकस बूथ पर केंद्रित कर दिया है।

सपा अध्यक्ष अखिलेश यादव ने कार्यकर्ताओं के सामने '27 में 27 हजार' का लक्ष्य रखा है। पार्टी की रणनीति के मुताबिक हर विधानसभा क्षेत्र में भाजपा के पक्ष में जाने वाले मतदाताओं के एक हिस्से को अपने पक्ष में लाने की कोशिश की जानी है। इसके लिए बूथ स्तर पर संगठन को सक्रिय करने, भाजपा समर्थक मतदाताओं के बीच पहुंच बनाने और स्थानीय मुद्दों के आधार पर संवाद बढ़ाने पर जोर दिया जा रहा है।

यह रणनीति इसलिए महत्वपूर्ण है क्योंकि सपा का लक्ष्य केवल अपने पारंपरिक समर्थकों को एकजुट रखना नहीं, बल्कि विरोधी खेमे में भी राजनीतिक सेंध लगाना है।

'27 में 27 हजार' आखिर है क्या?

सपा की इस रणनीति का केंद्र एक सीधा चुनावी गणित है—हर विधानसभा क्षेत्र में बड़ी संख्या में अतिरिक्त वोट अपने पक्ष में जोड़ना।

इसके लिए पार्टी कार्यकर्ताओं को बूथ स्तर पर छोटे-छोटे लक्ष्य हासिल करने की दिशा में काम करने को कहा जा रहा है। विचार यह है कि यदि प्रत्येक बूथ पर कुछ अतिरिक्त मतदाताओं तक पहुंच बनाई जाए तो विधानसभा क्षेत्र के स्तर पर इसका बड़ा असर पैदा किया जा सकता है।

यही वजह है कि सपा बूथ स्तरीय सम्मेलनों और कार्यकर्ता बैठकों को लगातार महत्व दे रही है।

अब सिर्फ अपना वोट नहीं, दूसरे का वोट भी

उत्तर प्रदेश की चुनावी राजनीति में लंबे समय से सामाजिक समीकरण और वोट ट्रांसफर निर्णायक मुद्दे रहे हैं। सपा की नई रणनीति में एक महत्वपूर्ण बदलाव यह है कि पार्टी अपने समर्थक वर्गों के साथ-साथ भाजपा के समर्थक मतदाताओं तक भी पहुंच बनाने की कोशिश कर रही है।

कार्यकर्ताओं को ऐसे मतदाताओं से संवाद करने, स्थानीय समस्याओं पर चर्चा करने और



सरकार के कामकाज को लेकर पार्टी का पक्ष रखने के लिए सक्रिय किया जा रहा है।

यहां चुनावी रणनीति का एक महत्वपूर्ण पहलू सामने आता है—वोटों का ध्रुवीकरण रोकने के बजाय विरोधी खेमे में सेंध लगाना।

सपा के लिए चुनौती यही है कि वह अपने मौजूदा समर्थन आधार को बरकरार रखते हुए नए मतदाताओं को भी अपने साथ जोड़ सके।

PDA से आगे बढ़ने की कोशिश

अखिलेश यादव की राजनीति में PDA—पिछड़ा, दलित और अल्पसंख्यक—एक प्रमुख राजनीतिक फॉर्मूला रहा है। 2024 के लोकसभा चुनाव में समाजवादी पार्टी ने इसी सामाजिक समीकरण को अपने अभियान का महत्वपूर्ण आधार बनाया था।

अब विधानसभा चुनाव की तैयारी में पार्टी इस सामाजिक आधार को बूथ संगठन के साथ जोड़ना चाहती है।

लेकिन इस बार कहानी केवल PDA तक सीमित रखने की कोशिश नहीं दिखाई देती। भाजपा के समर्थक माने जाने वाले मतदाताओं के बीच पहुंच बनाने का निर्देश इसी विस्तार की रणनीति का हिस्सा है।

सवाल यह है कि क्या सपा अपने पारंपरिक सामाजिक समीकरण को बनाए रखते हुए भाजपा के मतदाताओं के एक हिस्से को अपने पक्ष में आकर्षित कर पाएगी? इसका जवाब चुनावी मैदान में मतदाताओं के व्यवहार से ही मिलेगा।

बूथ पर मुकाबला क्यों महत्वपूर्ण है?

चुनाव में कुछ हजार वोटों का अंतर कई बार पूरी विधानसभा सीट का परिणाम बदल देता है। ऐसे में राजनीतिक दलों के लिए बूथ स्तर पर कुछ अतिरिक्त वोट जुटाना भी रणनीतिक महत्व रखता है।

इसीलिए भाजपा हो या सपा, सभी प्रमुख दल अपने बूथ संगठन को मजबूत करने पर जोर देते रहे हैं।

सपा की मौजूदा रणनीति में बूथ सम्मेलन, कार्यकर्ता संपर्क और मतदाता संवाद को चुनावी अभियान का आधार बनाने की कोशिश है। पार्टी के सांसदों और विधायकों को भी अपने क्षेत्रों में बूथ स्तर की गतिविधियां बढ़ाने पर जोर दिया जा रहा है।

यानी 2027 की तैयारी का एक बड़ा हिस्सा कैमरे के सामने नहीं, बल्कि बूथ की जमीन पर होने वाला है।

सरकार के खिलाफ मुद्दों की लंबी सूची

संगठन के साथ सपा ने सरकार को घेरने के लिए मुद्दों की भी एक लंबी सूची तैयार की है।

अखिलेश यादव रोजगार और भर्ती परीक्षाओं से जुड़े सवालों को लगातार उठाते रहे हैं। पेपर लीक, युवाओं के रोजगार, निवेश और औद्योगिक विकास को लेकर वे सरकार पर सवाल खड़े करते रहे हैं।

किसानों से जुड़ा मुआवजा, जमीन अधिग्रहण, स्वास्थ्य सेवाएं और कथित जमीन घोटाले भी सपा के राजनीतिक हमलों का हिस्सा हैं।

इन आरोपों पर सरकार और भाजपा का पक्ष अलग हो सकता है। इसलिए 2027 के चुनावी विमर्श में यह देखना महत्वपूर्ण होगा कि आरोपों के साथ सरकार की ओर से क्या जवाब और आंकड़े सामने आते हैं।

निवेश के दावों से लेकर अस्पतालों तक

उत्तर प्रदेश में निवेश का मुद्दा भी आने वाले चुनाव में राजनीतिक बहस का हिस्सा बन सकता है। सरकार निवेश सम्मेलनों और औद्योगिक परियोजनाओं के जरिए प्रदेश में निवेश बढ़ने की बात करती रही है, जबकि विपक्ष इन दावों के क्रियान्वयन और जमीन पर रोजगार पैदा होने को लेकर सवाल उठाता है।

स्वास्थ्य व्यवस्था को लेकर भी सपा सरकार पर निशाना साध रही है। अस्पतालों में सुविधाएं, डॉक्टरों की उपलब्धता और ग्रामीण क्षेत्रों की स्वास्थ्य सेवाएं ऐसे मुद्दे हैं जिनका सीधा संबंध आम मतदाता से है।

यही कारण है कि विपक्ष इन मुद्दों को केवल विधानसभा या प्रेस कॉन्फ्रेंस तक सीमित रखने के बजाय बूथ स्तर तक ले जाने की कोशिश कर रहा है।

2017 का सबक, 2027 की तैयारी

समाजवादी पार्टी के लिए 2017 का विधानसभा चुनाव एक महत्वपूर्ण राजनीतिक संदर्भ है। उस चुनाव में भाजपा ने संगठन को बूथ स्तर तक विस्तार देने और व्यापक चुनावी नेटवर्क खड़ा करने पर खास जोर दिया था।

अब सपा उसी स्तर पर अपने संगठन को मजबूत करने की कोशिश कर रही है।

अखिलेश यादव के सामने चुनौती दोहरी है—एक तरफ पार्टी के पारंपरिक वोट आधार को मजबूत रखना और दूसरी तरफ भाजपा के मजबूत संगठनात्मक ढांचे में सेंध लगाना।

इसलिए '27 में 27 हजार' केवल वोटों का लक्ष्य नहीं, बल्कि संगठन के लिए एक राजनीतिक संदेश भी है कि हर बूथ को चुनावी इकाई की तरह देखा जाए।

असली परीक्षा कार्यकर्ताओं की होगी

किसी भी चुनावी रणनीति की सफलता अंततः कागज पर नहीं, जमीन पर तय होती है। लक्ष्य तय करना आसान है, लेकिन उसे बूथ स्तर तक पहुंचाना कठिन।

इसके लिए कार्यकर्ताओं की सक्रियता, स्थानीय नेतृत्व की स्वीकार्यता, उम्मीदवारों की छवि, सामाजिक समीकरण और स्थानीय मुद्दों पर पकड़ जैसे कई कारक महत्वपूर्ण होंगे।

सपा जितना अपने संगठन को सक्रिय करेगी, उतना ही भाजपा भी अपने बूथ नेटवर्क को मजबूत करने की कोशिश करेगी। लिहाजा 2027 का मुकाबला केवल नेताओं के भाषणों का नहीं, बल्कि ग्राउंड ऑर्गनाइजेशन की क्षमता का भी मुकाबला होगा।

2027 का चुनाव अभी दूर, लेकिन लड़ाई शुरू

उत्तर प्रदेश की राजनीति में चुनाव केवल मतदान की तारीख से नहीं शुरू होते। असल राजनीतिक लड़ाई उससे काफी पहले शुरू हो जाती है—जब पार्टियां बूथों की सूची तैयार करती हैं, कार्यकर्ताओं को जिम्मेदारियां देती हैं और मतदाताओं के साथ संपर्क अभियान शुरू करती हैं।

सपा का '27 में 27 हजार' अभियान इसी शुरुआती तैयारी का हिस्सा है।

पार्टी का संदेश साफ है—बूथ मजबूत करो, मतदाता से सीधे जुड़ो और विरोधी खेमे में जगह बनाओ।

अब नजर इस पर रहेगी कि यह रणनीति कितनी दूर तक जमीन पर उतरती है। क्या 27 हजार का लक्ष्य वास्तविक बूथ नेटवर्क में बदल पाएगा? क्या भाजपा के पारंपरिक समर्थक मतदाताओं में सपा अपनी जगह बना पाएगी? और क्या PDA का सामाजिक समीकरण नए मतदाताओं को जोड़ने में सक्षम होगा?

इन सवालों के जवाब अभी भविष्य के गर्भ में हैं। लेकिन एक बात स्पष्ट है—2027 की राजनीतिक लड़ाई का काउंटडाउन शुरू हो चुका है और समाजवादी पार्टी ने इसकी शुरुआत बूथ से करने का फैसला किया है।





रामजी शर्मा

युवाओं के सपनों को नियुक्ति पत्र का सहारा

उत्तर प्रदेश में बदलती भर्ती व्यवस्था, पारदर्शिता और रोजगार के सवाल के बीच नई उम्मीद

किसी भी राज्य की सबसे बड़ी पूंजी उसकी युवा शक्ति होती है। युवा केवल जनसंख्या का एक हिस्सा नहीं होते, वे किसी प्रदेश के वर्तमान और भविष्य के बीच सबसे मजबूत कड़ी होते हैं। उनकी शिक्षा, रोजगार और अवसरों की उपलब्धता तय करती है कि आने वाले वर्षों में समाज किस दिशा में आगे बढ़ेगा।

उत्तर प्रदेश जैसे विशाल और युवा प्रदेश में यह सवाल और महत्वपूर्ण हो जाता है। यहां सरकारी नौकरी केवल रोजगार का एक विकल्प नहीं, बल्कि लाखों परिवारों के लिए स्थिर भविष्य की उम्मीद है। गांव से लेकर शहर तक हजारों युवा वर्षों तक प्रतियोगी परीक्षाओं की तैयारी करते हैं। उनके कमरे में किताबों का ढेर होता है, आंखों में नौकरी का सपना और पीछे परिवार की उम्मीद।

एक परीक्षा की तारीख उनके लिए केवल कैलेंडर की एक तारीख नहीं होती। उसके साथ महीनों की तैयारी जुड़ी होती है। परीक्षा के बाद परिणाम का इंतजार और परिणाम के बाद दस्तावेज सत्यापन तथा नियुक्ति पत्र की प्रतीक्षा—यह पूरी यात्रा धैर्य और भरोसे की परीक्षा होती है।

जब अंततः नियुक्ति पत्र हाथ में आता है तो वह महज एक कागज नहीं रहता। वह उस युवा की वर्षों की मेहनत का प्रमाण बन जाता है। परिवार के लिए आर्थिक सुरक्षा की शुरुआत और व्यवस्था के प्रति विश्वास का आधार बनता है।

नियुक्ति पत्र के पीछे छिपी हजारों कहानियां

सितंबर 2026 में उत्तर प्रदेश में नियुक्ति पत्र वितरण के कई कार्यक्रम हुए। सरकारी आंकड़ों के अनुसार 19 सितंबर को विभिन्न विभागों में चयनित 818 अभ्यर्थियों को नियुक्ति पत्र दिए गए। इसके बाद 20 सितंबर को पुलिस भर्ती एवं प्रोन्नति बोर्ड की सीधी भर्ती-2023 के 912 चयनित अभ्यर्थियों को नियुक्ति पत्र वितरित किए गए। 22 सितंबर को माध्यमिक शिक्षा विभाग के 3,567 चयनित अभ्यर्थियों को नियुक्ति पत्र दिए गए।

इन आंकड़ों को केवल संख्या के रूप में देखना आसान है, लेकिन प्रत्येक संख्या के पीछे एक व्यक्तिगत कहानी है।

किसी के पिता ने खेत बेचकर पढ़ाई का खर्च उठाया होगा, किसी ने छोटे से कमरे में वर्षों तैयारी की होगी, किसी ने नौकरी के साथ परीक्षा की तैयारी की होगी और किसी ने कई असफलताओं के बाद आखिरकार सफलता हासिल की होगी।

इसीलिए सरकारी भर्ती का प्रश्न केवल यह नहीं है कि कितने पद भरे गए। उससे बड़ा सवाल है कि भर्ती प्रक्रिया कितनी विश्वसनीय, समयबद्ध और निष्पक्ष है।

2017 के बाद भर्ती व्यवस्था पर जोर

उत्तर प्रदेश में सरकारी भर्तियों को लेकर लंबे समय से परीक्षा प्रणाली, पेपर लीक, परिणाम में देरी और न्यायिक विवाद जैसे मुद्दे सार्वजनिक बहस का हिस्सा रहे हैं। ऐसे वातावरण में सामान्य अभ्यर्थी के लिए सबसे बड़ा सवाल यही होता है कि क्या उसे अपनी योग्यता साबित करने का निष्पक्ष अवसर मिलेगा।

2017 के बाद योगी आदित्यनाथ सरकार ने सरकारी भर्तियों में पारदर्शिता और शुचिता को अपनी प्राथमिकताओं में शामिल किया। सरकार की ओर से बार-बार यह दावा किया गया कि भर्ती प्रक्रिया में किसी भी प्रकार की अनियमितता के लिए जगह नहीं होगी और चयन का आधार योग्यता होगा।

इस बदलाव को केवल सरकारी दावों से नहीं, बल्कि भर्ती प्रक्रियाओं, परीक्षा आयोजन, परिणाम और नियुक्तियों के वास्तविक रिकॉर्ड के आधार पर लगातार परखा जाना जरूरी है। क्योंकि किसी भी व्यवस्था में भरोसा एक घोषणा से नहीं बनता। वह लगातार होने वाले अनुभवों से बनता है।

पुलिस भर्ती बनी बड़ा रोजगार माध्यम

उत्तर प्रदेश में सरकारी रोजगार की चर्चा पुलिस भर्ती के बिना अधूरी है। बड़ी संख्या में युवा पुलिस विभाग में कांस्टेबल, उपनिरीक्षक और अन्य पदों के लिए प्रतियोगी परीक्षाओं में शामिल होते हैं।

पुलिस भर्ती एवं प्रोन्नति बोर्ड द्वारा आयोजित चयन प्रक्रियाओं में बड़ी संख्या में अभ्यर्थियों की भागीदारी होती है। इसलिए परीक्षा की सुरक्षा, शारीरिक दक्षता परीक्षण, लिखित परीक्षा, परिणाम और नियुक्ति—हर चरण की विश्वसनीयता महत्वपूर्ण हो जाती है।

सितंबर में 912 चयनित अभ्यर्थियों को नियुक्ति पत्र दिया जाना इसी भर्ती श्रृंखला का एक हिस्सा था। उनके लिए यह सिर्फ नौकरी नहीं, बल्कि लंबे इंतजार के बाद मिला परिणाम था।

पुलिस विभाग में होने वाली प्रत्येक नियुक्ति का एक व्यापक सार्वजनिक प्रभाव भी होता है। एक तरफ इससे युवा को रोजगार मिलता है, दूसरी तरफ राज्य की कानून-व्यवस्था से जुड़े मानव संसाधन में वृद्धि होती है।

शिक्षा में नियुक्ति, भविष्य में निवेश

सरकारी रोजगार का दूसरा बड़ा क्षेत्र शिक्षा है। 22 सितंबर को माध्यमिक शिक्षा विभाग के 3,567 चयनित अभ्यर्थियों को नियुक्ति पत्र दिए गए। इनमें प्रधानाचार्य, प्रधानाध्यापक, प्रवक्ता और सहायक अध्यापक जैसे पद शामिल थे।

एक शिक्षक की नियुक्ति का प्रभाव नियुक्त व्यक्ति और उसके परिवार से कहीं आगे जाता है। एक शिक्षक किसी विद्यालय में सैकड़ों विद्यार्थियों के लिए प्रेरणादायक भी हो सकता है। उसकी नियुक्ति सीधे तौर पर शिक्षा व्यवस्था की क्षमता से जुड़ती है।

इसी कारण शिक्षा क्षेत्र में भर्ती को केवल रोजगार के आंकड़े के रूप में देखना उचित नहीं होगा। यह मानव संसाधन में निवेश भी है।

अगर किसी ग्रामीण या कस्बाई विद्यालय में लंबे समय से शिक्षक का पद खाली है और वहां नियुक्ति होती है, तो उसका असर विद्यार्थियों की पढ़ाई पर पड़ता है। इसी तरह विषय विशेषज्ञ शिक्षकों की उपलब्धता माध्यमिक शिक्षा की गुणवत्ता से जुड़ती है।

स्वास्थ्य क्षेत्र में नियुक्तियां

स्वास्थ्य क्षेत्र में सरकारी नियुक्तियां भी उतनी ही महत्वपूर्ण हैं। डॉक्टर, तकनीशियन, फार्मासिस्ट, नर्सिंग स्टाफ और अन्य स्वास्थ्यकर्मी सरकारी स्वास्थ्य व्यवस्था की रीढ़ हैं।

19 सितंबर के नियुक्ति कार्यक्रम में एक्स-रे टेक्नीशियन समेत विभिन्न चिकित्सा पदों पर चयनित अभ्यर्थियों को नियुक्ति पत्र दिए गए। सरकारी सूचना के अनुसार इस कार्यक्रम में विभिन्न चिकित्सा सेवाओं से जुड़े कुल 818 चयनित अभ्यर्थियों को नियुक्ति पत्र प्रदान किए गए।

स्वास्थ्य क्षेत्र में एक नियुक्ति का अर्थ किसी अस्पताल या स्वास्थ्य केंद्र में एक अतिरिक्त मानव संसाधन है। इसका महत्व खासकर उन क्षेत्रों में अधिक होता है जहां विशेषज्ञ और तकनीकी स्टाफ की कमी लंबे समय से चुनौती रही है।

आयोगों पर भरोसा भी उतना ही जरूरी

उत्तर प्रदेश लोक सेवा आयोग और उत्तर प्रदेश अधीनस्थ सेवा चयन आयोग राज्य की भर्ती व्यवस्था के महत्वपूर्ण संस्थान हैं। इन संस्थाओं के माध्यम से हजारों युवा विभिन्न प्रशासनिक और अधीनस्थ पदों पर पहुंचते हैं।

इन आयोगों की भूमिका केवल परीक्षा आयोजित करने तक सीमित नहीं है। परीक्षा कैलेंडर, आवेदन प्रक्रिया, प्रश्नपत्र की सुरक्षा, परिणाम, दस्तावेज सत्यापन और नियुक्ति तक पूरी प्रक्रिया की विश्वसनीयता इन संस्थाओं की साख तय करती है।

एक परीक्षा में शामिल होने वाला युवा अक्सर महीनों नहीं, वर्षों की तैयारी करता है। इसलिए परिणाम में अनावश्यक देरी या प्रक्रिया में विवाद का सीधा प्रभाव उसके करियर पर पड़ता है।

भर्ती संस्थाओं की सबसे बड़ी पूंजी भी यही है—अभ्यर्थियों का विश्वास।

सरकारी नौकरी से आगे भी है रोजगार की चुनौती

यहां एक महत्वपूर्ण पहलू को नजरअंदाज नहीं किया जा सकता। उत्तर प्रदेश की विशाल युवा आबादी को केवल सरकारी नौकरियों के माध्यम से रोजगार देना संभव नहीं है।

सरकारी नियुक्तियां महत्वपूर्ण हैं, लेकिन राज्य को निजी क्षेत्र में रोजगार, उद्योग, स्टार्टअप, स्वरोजगार, कौशल विकास और उद्यमिता के अवसर भी लगातार बढ़ाने होंगे।

सरकारी नौकरी की तैयारी करने वाले लाखों युवा एक सीमित संख्या में उपलब्ध पदों के लिए प्रतियोगिता करते हैं। इसलिए व्यापक रोजगार नीति का लक्ष्य ऐसा वातावरण बनाना भी होना चाहिए जिसमें युवा सरकारी नौकरी के अलावा निजी क्षेत्र और उद्यमिता को भी मजबूत करियर विकल्प के रूप में देख सकें।

यही वजह है कि सरकारी भर्ती का रिकॉर्ड महत्वपूर्ण होने के साथ-साथ प्रदेश में निवेश, औद्योगिक विकास और नए रोजगार अवसरों का विस्तार भी उतना ही महत्वपूर्ण है।

आंकड़ों से बड़ा है भरोसा

सरकारी भर्तियों की संख्या महत्वपूर्ण है, लेकिन उससे भी महत्वपूर्ण है वह भरोसा जो भर्ती प्रक्रिया पैदा करती है।

एक युवा को यदि यह विश्वास हो कि परीक्षा समय पर होगी, प्रश्नपत्र सुरक्षित रहेगा, परिणाम निर्धारित

प्रक्रिया के अनुसार आएगा और चयन योग्यता के आधार पर होगा, तो वह अपने भविष्य को लेकर अधिक आश्वस्त होता है।

इसके विपरीत, भर्ती प्रक्रिया में बार-बार होने वाली अनिश्चितता युवा के समय, संसाधनों और मानसिक ऊर्जा पर असर डालती है।

इसलिए पारदर्शिता को केवल प्रशासनिक शब्द नहीं माना जाना चाहिए। यह लाखों अभ्यर्थियों के भविष्य से जुड़ा विषय है।

हर नियुक्ति के साथ बढ़ती जिम्मेदारी

योगी सरकार की ओर से सरकारी नियुक्तियों और भर्ती प्रक्रियाओं को पारदर्शी बनाने को उपलब्धि के रूप में प्रस्तुत किया जा रहा है। नियुक्ति पत्र वितरण के कार्यक्रमों में मुख्यमंत्री की प्रत्यक्ष मौजूदगी भी युवाओं के साथ संवाद और सरकार की प्राथमिकता के संदेश के रूप में सामने आती है।

लेकिन बड़ी संख्या में नियुक्तियों के साथ सरकार की जिम्मेदारी भी बढ़ती है।

हर नई भर्ती प्रक्रिया को पिछली प्रक्रिया से अधिक पारदर्शी और समयबद्ध बनाना होगा। जहां कमियां सामने आएं, वहां उनका समाधान करना होगा। अभ्यर्थियों की शिकायतों के लिए प्रभावी व्यवस्था बनानी होगी और परीक्षा प्रणाली को तकनीक के साथ लगातार सुरक्षित करना होगा।

क्योंकि युवाओं का भरोसा किसी एक नियुक्ति कार्यक्रम से नहीं, बल्कि लगातार अच्छे अनुभवों से मजबूत होता है।

नियुक्ति पत्र से आगे की कहानी

उत्तर प्रदेश की युवा शक्ति केवल नौकरी की तलाश करने वाली पीढ़ी नहीं है। यह वही पीढ़ी है जो आने वाले वर्षों में प्रदेश के विद्यालयों में पढ़ाएगी, अस्पतालों में सेवाएं देगी, पुलिस और प्रशासन में जिम्मेदारी संभालेगी, उद्योग लगाएगी और नई अर्थव्यवस्था का निर्माण करेगी।

इसलिए रोजगार नीति का केंद्र केवल पदों की संख्या नहीं, बल्कि अवसरों की गुणवत्ता और व्यवस्था की विश्वसनीयता होना चाहिए।

एक नियुक्ति पत्र किसी एक युवा के हाथ में आता है, लेकिन उसके प्रभाव की लहर पूरे परिवार तक पहुंचती है। परिवार की आर्थिक योजनाएं बदलती हैं, सामाजिक स्थिति बदलती है और भविष्य को लेकर दृष्टिकोण बदलता है।

उत्तर प्रदेश के लिए असली चुनौती यही है कि यह भरोसा कुछ हजार या कुछ लाख नियुक्तियों तक सीमित न रहे। प्रतियोगी परीक्षा की तैयारी कर रहे हर युवा को यह अनुभव हो कि उसके सामने एक निष्पक्ष अवसर मौजूद है।

क्योंकि जब युवा को अपनी मेहनत पर भरोसा होता है और व्यवस्था उसे अवसर देती है, तभी रोजगार एक व्यक्तिगत उपलब्धि से आगे बढ़कर सामाजिक परिवर्तन का माध्यम बनता है।

(लेखक पूर्व पी0एस0यू0 अधिकारी हैं। इस लेख में व्यक्त विचार लेखक के निजी विचार हैं। इनका किसी संस्था, संगठन अथवा अन्य आधिकारिक पक्ष से सहमत होना आवश्यक नहीं है।)

फिल्म और पर्यटन का नया मेल
फिल्म नीति से विरासत स्थलों तक बढ़ती संभावनाएं



फिल्म और मनोरंजन उद्योग को पर्यटन तथा स्थानीय अर्थव्यवस्था से जोड़ने की कोशिशों ने नई दिशा पकड़ी है। प्रदेश की फिल्म नीति का उद्देश्य फिल्म निर्माण के लिए ऐतिहासिक, सांस्कृतिक और प्राकृतिक स्थलों को उपयोगी बनाना है। सरकारी निवेश पोर्टल पर फिल्म सिटी और फाइनेंशियल सिटी जैसी परियोजनाओं को मनोरंजन तथा वित्तीय गतिविधियों के केंद्र के रूप में विकसित करने की संभावनाओं से जोड़ा गया है।

फिल्म निर्माण का आर्थिक प्रभाव केवल कलाकारों और निर्माताओं तक सीमित नहीं रहता। किसी फिल्म या वेब श्रृंखला की शूटिंग किसी शहर या जिले में होती है तो होटल, परिवहन, स्थानीय भोजन, सुरक्षा, तकनीकी सेवाओं, मेकअप, सेट निर्माण और छोटे व्यवसायों को भी काम मिलता है। यदि शूटिंग के बाद दर्शक उसी स्थान पर पर्यटन के लिए पहुंचते हैं तो इसका प्रभाव और बढ़ जाता है।

अयोध्या, वाराणसी, आगरा, प्रयागराज, मथुरा, बुंदेलखंड और पूर्वांचल जैसे क्षेत्रों में ऐतिहासिक और सांस्कृतिक स्थल बड़ी संख्या में हैं। सरकारी पर्यटन ढांचे में ताज महोत्सव, बुद्ध महोत्सव, गंगा महोत्सव और लखनऊ महोत्सव जैसे आयोजन भी दर्ज हैं। ऐसे आयोजनों से स्थानीय कला, संगीत, हस्तशिल्प और खानपान को मंच मिलता है।

मनोरंजन क्षेत्र का दूसरा महत्वपूर्ण पहलू स्थानीय संस्कृति है। हस्तशिल्प, लोकसंगीत, लोकनृत्य और पारंपरिक व्यंजन अब केवल सांस्कृतिक पहचान नहीं, बल्कि पर्यटन और बाजार की अर्थव्यवस्था का हिस्सा बन रहे हैं। हाल में अंतरराष्ट्रीय व्यापार मेले को लेकर कला, शिल्प और व्यंजनों को वैश्विक दर्शकों तक पहुंचाने पर जोर दिया गया।

फिल्म निर्माण के लिए बेहतर बुनियादी ढांचा उपलब्ध होने से छोटे शहरों को भी अवसर मिल सकते हैं। पहले बड़े फिल्म प्रोजेक्ट कुछ चुनिंदा महानगरों तक सीमित रहते थे, लेकिन डिजिटल कैमरा, ओटीटी और छोटी निर्माण इकाइयों ने शूटिंग के भौगोलिक दायरे को बढ़ाया है। उत्तर प्रदेश जैसे बड़े राज्य में यह अवसर रोजगार, पर्यटन और स्थानीय व्यवसायों के लिए नई मांग पैदा कर सकता है।

हालांकि मनोरंजन उद्योग में प्रतिस्पर्धा भी तेज है। शूटिंग सुविधाएं, अनुमति प्रक्रिया, सुरक्षा, तकनीकी प्रशिक्षित मानव संसाधन और पोस्ट-प्रोडक्शन ढांचा जितना मजबूत होगा, उतने अधिक प्रोजेक्ट आकर्षित किए जा सकेंगे। इसलिए फिल्म नीति का वास्तविक प्रभाव परियोजनाओं की संख्या के साथ-साथ स्थानीय स्तर पर बनने वाले रोजगार और व्यवसाय से भी जुड़ा होगा।



सोशल मीडिया और सूचना युद्ध

डॉ. सत्यवान सौरभ

आज सोशल मीडिया हमारे जीवन का महत्वपूर्ण हिस्सा बन चुका है। फेसबुक, एक्स, इंस्टाग्राम, यूट्यूब, व्हाट्सऐप और अन्य डिजिटल प्लेटफॉर्म के माध्यम से लोग कुछ ही सेकंड में देश-दुनिया की जानकारी प्राप्त कर लेते हैं। सोशल मीडिया ने सूचना के आदान-प्रदान को आसान बनाया है, लेकिन इसके साथ कुछ गंभीर चुनौतियाँ भी सामने आई हैं। अब सूचना का इस्तेमाल केवल लोगों को जानकारी देने के लिए नहीं, बल्कि उनकी सोच और भावनाओं को प्रभावित करने के लिए भी किया जा सकता है। इसी कारण सूचना युद्ध आज राष्ट्रीय सुरक्षा का एक महत्वपूर्ण विषय बन गया है।

सूचना युद्ध का अर्थ है ऐसी सूचनाओं का इस्तेमाल करना, जिनके माध्यम से लोगों की सोच, भावनाओं, विश्वास और निर्णयों को प्रभावित किया जा सके। इसमें झूठी खबर, आधी-अधूरी जानकारी, पुरानी तस्वीर या वीडियो को नई घटना से जोड़ना, किसी सही जानकारी को गलत संदर्भ में प्रस्तुत करना और लगातार किसी विशेष संदेश को लोगों तक पहुँचाना शामिल हो सकता है। इसका उद्देश्य हमेशा किसी इमारत या सैन्य ठिकाने को नुकसान पहुँचाना नहीं होता। कई बार इसका उद्देश्य लोगों के मन में भ्रम, डर, गुस्सा या अविश्वास पैदा करना होता है।

सोशल मीडिया ने सूचना युद्ध को बहुत तेज



कर दिया है। पहले किसी प्रचार को बड़े स्तर पर फैलाने के लिए अखबार, रेडियो, टेलीविजन या अन्य माध्यमों की आवश्यकता होती थी। आज एक मोबाइल फोन से तैयार किया गया वीडियो कुछ ही मिनटों में हजारों या लाखों लोगों तक पहुँच सकता है। लोग किसी संदेश को बिना उसकी सच्चाई जाँचे आगे भेज देते हैं। इस कारण गलत सूचना को रोकना कठिन हो जाता है।

भारत जैसे बड़े और विविध देश में यह चुनौती और महत्वपूर्ण हो जाती है। भारत में अलग-अलग धर्मों, जातियों, भाषाओं और क्षेत्रों के लोग रहते हैं। यदि किसी समुदाय से जुड़ी झूठी या भड़काऊ जानकारी सोशल मीडिया पर फैलती है, तो उसका प्रभाव समाज में तनाव के रूप में दिखाई दे सकता है। किसी छोटी स्थानीय घटना को गलत तरीके से प्रस्तुत करके उसे धार्मिक या सामुदायिक रंग दिया जा सकता है। इससे लोगों के बीच अविश्वास बढ़ सकता है और कानून-व्यवस्था की स्थिति भी बिगड़ सकती है।

सोशल मीडिया पर अफवाहों का प्रभाव कई बार बहुत गंभीर हो सकता है। किसी व्यक्ति पर गलत आरोप लगाने, किसी समुदाय के खिलाफ झूठी बात फैलाने या किसी घटना की गलत तस्वीर प्रस्तुत करने से भीड़ की भावनाएँ भड़क सकती हैं। ऐसी स्थिति में पुलिस और प्रशासन को अचानक बड़ी चुनौती का सामना करना पड़ता है। इसलिए संवेदनशील घटनाओं के समय सही और आधिकारिक जानकारी जल्दी उपलब्ध कराना बहुत जरूरी है।

सूचना युद्ध का एक नया रूप डीपफेक है। कृत्रिम बुद्धिमत्ता की मदद से किसी व्यक्ति के चेहरे और आवाज़ को बदलकर नकली वीडियो बनाया जा सकता है। देखने वाले को पहली नजर में यह वास्तविक लग सकता है। यदि किसी नेता, अधिकारी, सेना के अधिकारी या किसी प्रसिद्ध व्यक्ति के नाम से गलत वीडियो प्रसारित किया जाए, तो इससे लोगों में भ्रम पैदा हो सकता है। चुनाव, युद्ध, आतंकवादी घटना या किसी बड़े संकट के समय ऐसी सामग्री विशेष रूप से नुकसानदायक हो सकती है।

सैन्य क्षेत्र में सूचना युद्ध की चुनौती और गंभीर हो जाती है। किसी सैन्य अभियान के दौरान सैनिकों की स्थिति, गतिविधियों, हथियारों या हताहतों से जुड़ी गलत जानकारी फैलाई जा सकती है। पुराने युद्ध के वीडियो को वर्तमान घटना का बताया जा सकता है। किसी नकली सैनिक वीडियो या झूठे बयान को वास्तविक बताकर लोगों के मनोबल को प्रभावित करने का प्रयास किया जा सकता है। इसलिए सुरक्षा से जुड़ी जानकारी को साझा करते समय विशेष सावधानी आवश्यक है।

सूचना युद्ध का संबंध केवल भारत के अंदर की घटनाओं से नहीं है। अंतरराष्ट्रीय स्तर पर भी सोशल मीडिया का इस्तेमाल किसी देश की छवि और नीतियों को प्रभावित करने के लिए किया जा सकता है। विभिन्न संगठन या विदेशी नेटवर्क किसी घटना को अपने हित के अनुसार प्रस्तुत कर सकते हैं। सीमा विवाद, आतंकवाद, कश्मीर, आंतरिक अशांति और अन्य संवेदनशील विषयों पर लगातार एक विशेष प्रकार की जानकारी फैलाकर अंतरराष्ट्रीय जनमत को प्रभावित करने की कोशिश की जा सकती है।

सोशल मीडिया पर बॉट और नकली अकाउंट भी एक बड़ी चुनौती हैं। सामान्य व्यक्ति को लग सकता है कि किसी मुद्दे पर बहुत बड़ी संख्या में लोग एक जैसा विचार रख रहे हैं, जबकि वास्तव में कई अकाउंट एक ही समूह द्वारा चलाए जा सकते हैं। एक ही संदेश को बार-बार साझा करके उसे लोकप्रिय दिखाने की कोशिश की जा सकती है। इससे वास्तविक जनमत और कृत्रिम रूप से बनाए गए ऑनलाइन माहौल के बीच अंतर करना मुश्किल हो जाता है।

प्राकृतिक आपदा, महामारी या किसी बड़े संकट के समय भी गलत सूचना गंभीर समस्या बन सकती है। यदि किसी क्षेत्र में बाढ़, भूकंप या किसी अन्य आपदा के बारे में गलत जानकारी फैलती है, तो लोग गलत स्थान पर जा सकते हैं या जरूरी सहायता से वंचित हो सकते हैं। इसी प्रकार स्वास्थ्य से जुड़ी गलत जानकारी लोगों के व्यवहार को प्रभावित कर सकती है। इसलिए संकट के समय विश्वसनीय सूचना व्यवस्था बहुत जरूरी है।

भारत को इस चुनौती से निपटने के लिए तकनीक और संस्थागत क्षमता दोनों को मजबूत करना होगा। फर्जी खबरों, डीपफेक और बॉट नेटवर्क की पहचान के लिए आधुनिक तकनीक का इस्तेमाल बढ़ाना चाहिए। कृत्रिम बुद्धिमत्ता की सहायता से संदिग्ध सामग्री की पहचान की जा सकती है, लेकिन अंतिम सत्यापन विशेषज्ञों द्वारा किया जाना आवश्यक है। सरकारी विभागों के बीच बेहतर समन्वय भी जरूरी है ताकि किसी संकट के समय सही जानकारी तेजी से जनता तक पहुँच सके।

सरकार के साथ-साथ सोशल मीडिया कंपनियों की भी जिम्मेदारी है। उन्हें फर्जी अकाउंट, समन्वित गलत सूचना और खतरनाक फर्जी सामग्री की पहचान के लिए प्रभावी व्यवस्था विकसित करनी चाहिए। साथ ही, अभिव्यक्ति की स्वतंत्रता और नागरिकों के अधिकारों का सम्मान करते हुए गलत सूचना से निपटने के बीच संतुलन बनाए रखना जरूरी है।

इस पूरी प्रक्रिया में आम नागरिक की भूमिका सबसे महत्वपूर्ण है। किसी भी तस्वीर, वीडियो या संदेश को देखकर तुरंत विश्वास नहीं करना चाहिए। विशेष रूप से धार्मिक, राजनीतिक, सैन्य और सामुदायिक विषयों से जुड़ी सामग्री को आगे भेजने से पहले उसके स्रोत की जाँच करनी चाहिए। यदि किसी सूचना पर संदेह हो तो उसे साझा न करना ही सबसे सुरक्षित कदम है।

स्कूलों और विश्वविद्यालयों में डिजिटल और मीडिया साक्षरता को बढ़ावा देना भी आवश्यक है। बच्चों और युवाओं को यह सिखाया जाना चाहिए कि इंटरनेट पर उपलब्ध हर जानकारी सही नहीं होती। उन्हें स्रोत की जाँच, तस्वीर और वीडियो की पहचान तथा फर्जी खबरों को समझने की बुनियादी जानकारी दी जानी चाहिए।

अंततः, सूचना युद्ध केवल सरकार, सेना या साइबर सुरक्षा एजेंसियों की समस्या नहीं है। यह पूरे समाज की चुनौती है। आधुनिक समय में देश की सुरक्षा केवल सीमाओं और सैन्य शक्ति से तय नहीं होती, बल्कि लोगों के विश्वास, सामाजिक एकता और सही सूचना तक उनकी पहुँच से भी जुड़ी है। तकनीकी क्षमता, तेज़ और विश्वसनीय सरकारी संचार, मजबूत साइबर सुरक्षा, जिम्मेदार सोशल मीडिया और जागरूक नागरिक मिलकर भारत को सूचना युद्ध की चुनौतियों से अधिक सुरक्षित बना सकते हैं।

विभिन्न देशों के बीच चल रहे युद्ध का भारत पर प्रभाव



प्रहलाद सबनानी

वैश्विक स्तर पर, विशेष रूप से आर्थिक क्षेत्र में, परिस्थितियां तेजी से रसातल में जाती हुई दिखाई दे रही हैं। विभिन्न देशों (रूस-यूक्रेन, इजराईल-हम्मास, ईरान-अमेरिका एवं सऊदी अरब-हूथी) के बीच चल रहे युद्ध ने उन देशों के आर्थिक क्षेत्र को भी विपरीत रूप से प्रभावित करना प्रारम्भ कर दिया है, जो प्रत्यक्ष अथवा अप्रत्यक्ष रूप से इस युद्ध में किसी भी प्रकार से नहीं जुड़े हैं। इस श्रेणी के देशों में भारत का नाम सबसे ऊपर उभर कर सामने आ रहा है। दरअसल, भारत अपनी कुल खपत का 85 प्रतिशत से अधिक कच्चा तेल अन्य देशों से आयात करता है। उक्त युद्ध प्रारम्भ होने के बाद से अंतरराष्ट्रीय बाजार में कच्चे तेल की कीमतें आसमान छू रही हैं एवं यह 100 अमेरिकी डॉलर प्रति बैरल से ऊपर निकल गईं हैं। भारतीय अर्थव्यवस्था के लिए यह स्थिति किसी भी कीमत पर उचित नहीं है, क्योंकि भारत को महंगी दरों पर कच्चे तेल का आयात करना पड़ रहा है और इससे महंगे कच्चे तेल के साथ साथ भारत में मुद्रा स्फीति भी आयातित हो रही है। साथ ही, भारत को महंगे कच्चे तेल के आयात का अमेरिकी डॉलर में भुगतान करना होता है, जिससे भारतीय रुपए की कीमत पर अंतरराष्ट्रीय बाजार में दबाव बढ़ता जा रहा है एवं भारतीय रुपए का लगातार अवमूल्यन होता हुआ दिखाई दे रहा है। भारतीय रुपए के अवमूल्यन से भारत द्वारा आयात किए जाने वाले समस्त उत्पाद महंगे हो जाते हैं।

उक्त वर्णित युद्ध प्रारम्भ होने के पूर्व, भारतीय अर्थव्यवस्था (सकल घरेलू उत्पाद के आधार पर) वैश्विक स्तर पर अमेरिका, चीन, जर्मनी के पश्चात चौथे स्थान पर पहुंच गई थी। परंतु, अंतरराष्ट्रीय बाजार में भारतीय रुपए की कीमत में आए परिवर्तन के चलते भारतीय अर्थव्यवस्था वैश्विक स्तर पर छठे स्थान पर पहुंच गई है, जबकि सकल घरेलू उत्पाद उसी स्तर पर बना रहा है। इसका मुख्य कारण, अंतरराष्ट्रीय बाजार में अमेरिकी डॉलर का भारतीय रुपए की तुलना में लगातार मजबूत होते जाना है।

जैसे जैसे रुस-यूक्रेन युद्ध और अधिक आक्रामक होता जा रहा है, वैसे वैसे अब यह सम्भावना बलवती होती जा रही है कि अंतरराष्ट्रीय बाजार में गेहूं एवं अन्य खाद्य पदार्थों के दामों में भी भारी वृद्धि देखने में आ सकती है, क्योंकि यूक्रेन गेहूं का बड़ा उत्पादक देश है। यूक्रेन ने रूस के कच्चे तेल को संसाधित कर पेट्रोल एवं डीजल बनाने वाली उत्पादन इकाईयों को भी भारी नुक्सान पहुंचाया है। इससे रूस ने गैस एवं ईंधन की आपूर्ति को यूरोपीयन देशों को स्थगित कर दिया है। सर्दी के मौसम में यूरोपीयन देशों को गैस एवं ईंधन की सबसे अधिक आवश्यकता होती है। परंतु, इस वर्ष यूरोपीयन देशों को सर्दी के मौसम में गैस एवं ईंधन की आपूर्ति प्रभावित होने वाली है इससे इन देशों के नागरिकों को सबसे अधिक कठिनाई का सामना करना पड़ सकता है।

अमेरिका ने ईरान के साथ युद्ध प्रारम्भ करके विश्व के कई देशों को भारी परेशानी में डाल दिया है। न केवल कच्चा तेल बल्कि फर्टिलाइजर, खाद्य पदार्थ, गैस, आदि की आपूर्ति प्रभावित हुई है। साथ ही, वित्तीय क्षेत्र में भी कई देशों को भारी कठिनाईयों के बीच में धकेल दिया है। यदि यह युद्ध कुछ समय और चलता है, जिसके कि आसार दिखाई दे रहे हैं, तो कई देशों के दिवालिया होने की सम्भावना बनती नजर आ रही है। अमेरिका में मुद्रा स्फीति को नियंत्रित करने के उद्देश्य से यू एस फेडरल रिजर्व ने ब्याज दरों में 25 आधार बिंदुओं की बढ़ौतरी की है। अक्टोबर 2026 एवं दिसम्बर 2026 माह में भी पुनः 25 आधार बिंदुओं की वृद्धि की सम्भावना व्यक्त की जा रही है, क्योंकि अंतरराष्ट्रीय बाजार में तेल की कीमतें उच्च स्तर पर बनी रहने की प्रबल सम्भावना है एवं इसके चलते अमेरिका में भी मुद्रा स्फीति पर



नियंत्रण मुश्किल है। ब्याज दरों में वृद्धि के चलते अमेरिका में यू एस बांड यील्ड में भी लगातार वृद्धि हो रही है एवं यह अपने लगभग उच्चतम स्तर 5.25 प्रतिशत तक पहुंच गई है। बांड यील्ड के उच्च स्तर पर पहुंचने के चलते अमेरिकी निवेशक तेजी से आगे बढ़ती अर्थव्यवस्थाओं से अपना निवेश निकाल कर अमेरिकी बांड में निवेश कर रहे हैं क्योंकि अपेक्षाकृत यह सुरक्षित निवेश है एवं ब्याज दर भी अधिक मिल रही है। भारत जैसी तेजी से आगे बढ़ रही अर्थव्यवस्थाओं के लिए यह स्थिति ठीक नहीं है। भारत सहित अन्य विकासशील देशों से निकल रहे विदेशी निवेश से इन देशों की अपनी मुद्रा का अवमूल्यन हो रहा है, जिससे इन देशों में विभिन्न पदार्थों के आयात महंगे हो रहे हैं एवं इन देशों में मुद्रा स्फीति फैलने का खतरा उत्पन्न हो गया है। भारत सहित इन विकासशील देशों को भी मुद्रा स्फीति को नियंत्रित करने के उद्देश्य से ब्याज दरों में वृद्धि करनी होगी। कुल मिलाकर अमेरिका ने ईरान के साथ युद्ध प्रारम्भ कर विश्व के कई देशों के लिए विशेष रुप से आर्थिक क्षेत्र में समस्याएं खड़ी कर दी हैं।

भारत अभी तक तो अपनी आर्थिक सेहत को सम्हाले हुए है, क्योंकि भारत के पास 75,000 करोड़ अमेरिकी डॉलर से अधिक का विदेशी मुद्रा भंडार मौजूद है एवं भारत में आर्थिक गतिविधियों में रफ्तार के चलते प्रत्यक्ष एवं अप्रत्यक्ष करों में वसूली प्रभावी बनी हुई है। परंतु, युद्ध यदि और अधिक लंबे समय तक चलता है तो भारत में भी आर्थिक क्षेत्र में कुछ परेशानियां आ सकती हैं। बहुत सम्भव है कि भारतीय रिजर्व बैंक अपनी अक्टोबर 2026 माह में होने वाली बैठक में रेपो दर में 25 आधार बिंदुओं की वृद्धि करने को मजबूर हो। ब्याज दरों में वृद्धि का सीधा प्रभाव भारत के आर्थिक विकास की गति पर पड़े बिना नहीं रह सकेगा। भारत द्वारा आयात की जाने वाली विभिन्न वस्तुओं की कीमतें यदि अंतरराष्ट्रीय बाजार में बढ़ रही हैं तो भारत को इन वस्तुओं को उच्च कीमतों पर खरीदने को मजबूर होना पड़ेगा। भारतीय शेयर बाजार भी विपरीत रुप से प्रभावित हो सकता है क्योंकि विदेशी संस्थागत निवेशक भी भारतीय पूंजी बाजार से अपने निवेश को निकाल कर अमेरिकी बांड में अपना निवेश बढ़ा रहे है। इससे भारतीय रुपए पर अतिरिक्त दबाव उत्पन्न होगा और अंतरराष्ट्रीय बाजार में रुपए की कीमत और अधिक कम हो सकती है।

विभिन्न देशों के बीच चल रहे युद्ध के बीच, भारतीय नागरिकों को भी अपने कर्तव्य का निर्वहन करने हेतु आगे आना होगा। इस संदर्भ में केंद्र एवं समस्त राज्य सरकारें तो अपना कार्य पूरी ईमानदारी से सम्पन्न करने का प्रयास कर ही रही हैं, परंतु नागरिकों को भी स्वदेशी अपनाकर एवं विभिन्न उत्पादों का संयम के साथ उपयोग कर अन्य देशों से उत्पादों के आयात को कम करने के प्रयास करने होंगे। भारत में उत्पादित वस्तुओं के उपयोग को बढ़ावा देना होगा एवं आयातित वस्तुओं के उपयोग को कम करना होगा ताकि विदेशी मुद्रा को बचाया जा सके। भारतीय नागरिकों द्वारा यदि भारत में उत्पादित वस्तुओं के उपयोग को बढ़ावा दिया जाता है तो भारतीय विनिर्माण इकाईयों को विस्तार में जाना होगा एवं इससे भारत में ही रोजगार के नए अवसर निर्मित होंगे। कुल मिलाकर अब अन्य देशों से आयातित वस्तुओं के उपयोग को समाप्त करना होगा, यदि समाप्त नहीं कर सकते हैं तो कम तो करना ही होगा।

भविष्य में, भारत सहित विकासशील देशों के लिए विशेष रुप से आर्थिक क्षेत्र में आने वाली कठिनाईयों के हल के लिए इन देशों के नागरिकों को अपनी महती भूमिका निभाने के लिए अपने आप को अभी से तैयार करना होगा। बहुत सम्भव है कि इन देशों के केंद्रीय बैकों को ब्याज दरों में वृद्धि करना पड़े एवं इन देशों में पेट्रोल, डीजल, फर्टिलाईजर, गैस एवं अन्य खाद्य पदार्थों की कीमतों में वृद्धि देखने को मिले, ऐसे समय में इन देशों के नागरिकों को अपने देश के हित में इस कठिन समय को सहज बनाने के लिए अपने आप को अभी से तैयार करना होगा।



चुनाव आयोग बनाम विपक्षी दल

वीरेन्द्र सिंह परिहार

देश के एक प्रमुख अंग्रेजी समाचार-पत्र में यह प्रकाशित हुआ कि एसआईआर यानी मतदाता सूची के शुद्धिकरण को लेकर चुनाव आयोग के दो सदस्यों सर्व श्री कमलजीत सन्धू और डा0 विवेक जोशी द्वारा 14 बार आपत्ति दर्ज कराई गई। उक्त खबर में यही नहीं बताया गया कि उक्त आपत्तियाँ दर्ज कराने का परिणाम क्या निकला लेकिन 'कौआ कान ले गया' की तर्ज पर कांग्रेस कमेत सभी विरोधी दल चुनाव आयोग के प्रमुख आयुक्त ज्ञानेश कुमार पर हमलावर हो गये। राहुल गाँधी ने ज्ञानेश कुमार को लेकर कहा- "हम आपको पकड़ेगे ? आशय यह कि जब सत्ता में आयेंगे तो ज्ञानेश कुमार को गिरफ्तार कर जेल में डाल देंगे। अरविंद केजरीवाल तो जैसे मौके की तलाश में ही थे। सीधे कह बैठे- "ज्ञानेश कुमार को तुरंत गिरफ्तार कर उन पर मुकदता चलाया जाना चाहिए। बड़बोले बिहार से कांग्रेस सांसद पप्पू यादव ने तो सीधे ज्ञानेश कुमार को खम्भे पर लटकाने की माँग कर दी तो मुकेश सहनी ने तो सीधे ज्ञानेश कुमार को गोली मारने की इच्छा व्यक्त कर दी। अखिलेश यादव तो इस दौर में चुनी गई भाजपा सरकारों को असंवैधानिक होने का प्रमाण-पत्र बाँटने लगे। राहुल गाँधी ने भी उसी सुर में सुर मिलाते हुये कहा दिया कि भाजपा ने ज्ञानेश कुमार के सहयोग से वोट चोरी कर सरकारें बनाई है।

दूसरी तरफ बंगाल भाजपा के अध्यक्ष शामिक भट्टाचार्य ने ज्ञानेश कुमार के चुनाव क्षेत्र में किये गये सुधारों/कार्यों को लेकर उन्हें पदम विभूषण देने की माँग कर डाली। यदि शामिक भट्टाचार्य की बाते छोड़ भी दी जाये तो केरल सरकार के गृहमंत्री रमेश चेन्निथला जो कांग्रेस पार्टी के हैं, उन्होंने चुनाव आयोग की निष्पक्षता की प्रशंसा करते हुये कहा कि पहले भी वाम मोर्चा की सरकार मृतकों के नाम वोटरलिस्ट में जोड़कर फर्जी मतदान कराती थी लेकिन अब चुनाव आयोग के चलते ऐसा नहीं है और फेयर चुनाव हो रहा है जिसके चलते केरल में यूपीए की सरकार सत्तारुढ़ है।

गौर करने की बात यह कि यदि चुनाव आयोग के सहयोग और समर्थन से ही भाजपा एनडीए वोट चोरी कर तमाम चुनाव जीत रही है तो फिर तमिलनाडु में भाजपा का मात्र 1 ही विधायक कैसे ? यदि ऐसा था तो फिर केरल, कर्नाटक, तेलंगाना, पंजाब, हिमांचल प्रदेश के सभी प्रान्तो में भाजपा की सरकारें होनी चाहिए थी। उल्लेखनीय यह भी कि यदि ज्ञानेश कुमार के चलते इस तरह वोट चोरी हो रही थी तो उत्तर प्रदेश में भाजपा को गत लोकसभा चुनाव में 80 में मात्र 37 सीटें ही क्यों मिली जबकि 2019 के लोकसभा चुनावों में भाजपा को इससे करीब दुगुनी सीटें मिली थी। यदि ऐसा था, तो 2024 के लोकसभा चुनावों में भाजपा को मात्र 240 सीटें ही क्यों जबकि 2014 और 2019 के दोनो चुनावों में भाजपा को अपने आप पूर्ण बहुमत प्राप्त था।

विपक्षी दलों का तो यहाँ तक आरोप है कि चुनाव आयोग के सहारे भाजपा सिर्फ वोटो की ही नहीं, राजनीतिक दलों की भी चोरी कर रही है। यह बाते बंगाल में तृणमूल के विभाजन, महाराष्ट्र में शिवसेना और राष्ट्रवादी कांग्रेस के विभाजन और उनके चुनाव चिन्ह जब्त करने को लेकर कही जाती रही है पर कांग्रेस पार्टी को क्या यह पता नहीं है कि अतीत में उस पार्टी का स्वतः

दो बार विभाजन हो चुका है और उसके 'दो बैलों की जोड़ी' और 'बछड़े को दूध पिलाती गाय' का चुनाव चिन्ह चुनाव आयोग द्वारा जब्त कर लिया गया था जिसके परिणामस्वरूप आज कांग्रेस का चुनाव चिन्ह 'हाथ' का पंजा है।

तथ्यतः यह बात भी गलत है कि एसआईआर से फायदा भाजपा को हो रहा है। एसआईआर होने के पश्चात बंगाल के गत विधान चुनावों में जिन विधानसभा क्षेत्रों में व्यापक स्तर पर वोट काटे गये, वहाँ 15 सीटों पर तृणमूल चुनाव जीत कर आई। बड़ी बात यह भी कि जो वोट कटते हैं, उसमें चुनाव आयोग कैसे यह पता कर सकता है कि यह किस पार्टी के वोट हैं ? सच्चाई यह कि कांग्रेस पार्टी अपने शासन के दौर में चुनाव आयोग समेत सभी संवैधानिक संस्थाओं में अपने प्रति और खास तौर पर एक खानदान के प्रति वफादार लोगो को ही नियुक्त करती थी और अपने अनुरूप फैसले कराती थी। वैसा वह विपक्ष में रहकर भी चाहती है, कि चुनाव आयोग और दूसरी संवैधानिक संस्थाएं उनके इशारे पर नाचे, नहीं तो वह उन्हें बदनाम करने का प्रयास करेंगे। यहाँ तक कि उन्हें खुलेआम धमकायेंगे।

सत्ता में रहकर कांग्रेस पार्टी द्वारा चुनाव आयोग के दुरुपयोग का सबसे बड़ा उदाहरण 2009 के आस-पास नवीन चावला की नियुक्ति है, जिसके बारे में उस समय के मुख्य चुनाव आयुक्त वी. गोपालस्वामी ने कहा था कि वह वाशरुम में जाकर चुनाव आयोग की बातों को कांग्रेस पार्टी तक पहुँचाते हैं, और उनको हटाने के लिये न्यायालय तक गये थे। इसके बावजूद नवीन चावला को मुख्य चुनाव आयुक्त बनाया गया और रिटायरमेंट के बाद भी उन्हें उपकृत किया गया। यह भी सच्चाई है कि विपक्ष आज जिन दो चुनाव आयुक्तों को हीरो की तरह पेश कर रहा है, उनकी नियुक्ति के समय उन्हें मोदी का आदमी बताकर भारी विरोध किया था। अब जहाँ तक चुनाव आयोग में किसी बिन्दु पर असहमति जताने का प्रश्न है, तो यह तो एक लोकतांत्रिक प्रक्रिया का हिस्सा है लेकिन इससे बड़ा सच यह कि चाहे एसआईआर का मामला हो, चाहे फार्म-6 का डिक्लेयरेशन का मामला हो, सभी मामलों में निर्णय सर्वसम्मति से लिये गये। यहाँ तक कि देश की शीर्ष अदालत ने अपनी ओर से कुछ सुझाव दिये हों पर उनके द्वारा कहीं भी चुनाव आयोग के कार्यों को विधि विरुद्ध न तो घोषित किया और न ही कोई नकारात्मक टिप्पणी ही की गई।

यह भी सभी को पता है कि चुनाव आयोग में सभी निर्णय बहुमत से ही लिये जा सकते हैं, फिर किसी निर्णय को लेकर अकेले ज्ञानेश कुमार को कैसे कटघरे में खड़ा किया जा सकता है ? अब विपक्ष कह रहा है कि भाजपा/एनडीए ने हरियाणा, महाराष्ट्र, दिल्ली के चुनाव ज्ञानेश कुमार के चलते जीते जबकि ज्ञानेश कुमार को मुख्य सूचना आयुक्त ही 15 फरवरी 2025 को बनाया गया और उपरोक्त राज्यों के विधानसभा चुनाव पहले ही हो चुके थे। इससे समझा जा सकता है कि विपक्ष कैसे झूठ का पहाड़ खड़ा करता है। यहाँ तक कि पूरे गैर जिम्मेदारी से प्रधानमंत्री, गृहमंत्री और मुख्य चुनाव आयुक्त को देशद्रोही बता देता है। रहा सवाल इंडियन एक्सप्रेस की साख और विश्वसनीयता का, तो यह किसी जमाने में 'सेना द्वारा दिल्ली की ओर कूच' जैसे निराधार बाते भी प्रकाशित कर चुका है।

अपने झूठ और निराधार आरोपों के चलते राहुल गाँधी तो कई बार न्यायालयों में माफी माँग चुके हैं। कुछ मामलों में अरविंद केजरीवाल भी इसी स्थिति से गुजर चुके है पर 'लागी नहीं छूट रामा' की तर्ज पर ये अपने आदतों से बाज नहीं आते और कई बार तो झूठ का पहाड़ खड़ा करने की कोशिश करते हैं। चुनावों में अपनी सैकड़ों हारों को छिपाने और जवाबदेही से बचने के लिये राहुल गाँधी और पूरा विपक्ष ईव्हीएम हैक से लेकर वोट चोरी का विमर्श खड़ा करने का प्रयास करता हैं और संवैधानिक संस्थाओं को दबाव में लाने की विफल कोशिश करता हैं। उनके इन झूठे आरोपों का देश के मतदाताओं पर कुछ उल्टा ही असर दिखाई देता है। तभी तो अखिल भारतीय विद्यार्थी परिषद सिर्फ दिल्ली विश्वविद्यालय में ही नहीं, पंजाब और तेलंगाना (हैदराबाद) जैसे विश्वविद्यालयों में अपना परचम फहरा चुका है।

खेल ढांचे का विस्तार

स्टेडियम से अंतरराष्ट्रीय आयोजन तक बढ़ती खेल अर्थव्यवस्था



खेलों के क्षेत्र में बुनियादी ढांचे और प्रशिक्षण सुविधाओं का विस्तार किसी भी राज्य की खेल प्रतिभाओं को आगे बढ़ाने के लिए महत्वपूर्ण होता है। यहां कानपुर का ग्रीन पार्क, लखनऊ का इकाना स्टेडियम, अयोध्या का अंतरराष्ट्रीय खेल परिसर और ग्रेटर नोएडा का अंतरराष्ट्रीय क्रिकेट स्टेडियम जैसे प्रमुख केंद्र मौजूद हैं। सरकारी जानकारी में इकाना की दर्शक क्षमता लगभग 50 हजार और सैफई के अंतरराष्ट्रीय क्रिकेट स्टेडियम की क्षमता लगभग 43 हजार बताई गई है।

खेल ढांचे का असर केवल बड़े क्रिकेट मैचों तक सीमित नहीं होता। आधुनिक स्टेडियम और प्रशिक्षण केंद्र एथलेटिक्स, हॉकी, कुश्ती, कबड्डी, तैराकी और अन्य खेलों के लिए भी सुविधाएं उपलब्ध कराने की क्षमता रखते हैं। खेल प्रतिभाओं को शुरुआती स्तर पर प्रशिक्षण, पोषण, उपकरण और प्रतियोगिता का अनुभव मिलना आवश्यक है।

राज्य की खेल पहचान में हॉकी और कुश्ती की पुरानी भूमिका रही है। मेजर ध्यानचंद जैसी महान खेल प्रतिभाओं का संबंध प्रदेश से रहा है। क्रिकेट की लोकप्रियता बढ़ने के साथ अब क्रिकेट अकादमियों और प्रतियोगिताओं का नेटवर्क भी विस्तृत हुआ है। इससे खेलों की अर्थव्यवस्था में प्रशिक्षकों, फिटनेस विशेषज्ञों, फिजियोथेरेपिस्ट, खेल सामग्री निर्माताओं और आयोजन कंपनियों के लिए भी अवसर पैदा होते हैं।

खेल पर्यटन एक दूसरा उभरता क्षेत्र है। जब किसी शहर में बड़े अंतरराष्ट्रीय या राष्ट्रीय टूर्नामेंट होते हैं तो खिलाड़ियों के साथ दर्शक, मीडिया, प्रायोजक और आयोजन से जुड़े लोग भी आते हैं। इससे होटल, परिवहन, भोजन और स्थानीय व्यवसायों को लाभ मिल सकता है।

ग्रेटर नोएडा का बुद्ध अंतरराष्ट्रीय सर्किट भी खेल और पर्यटन के मेल का उदाहरण है। 5.14 किलोमीटर लंबा यह ट्रैक मोटरस्पोर्ट के लिए बनाया गया था।

हालांकि खेल क्षेत्र में वास्तविक सफलता का पैमाना केवल स्टेडियमों की संख्या नहीं है। जरूरी है कि जिला स्तर पर प्रतिभा पहचान, नियमित प्रशिक्षण, प्रशिक्षित कोच और प्रतियोगिता व्यवस्था मजबूत हो। ग्रामीण क्षेत्रों के खिलाड़ियों को सुविधाओं से जोड़ना भी महत्वपूर्ण है।

यदि खेल बुनियादी ढांचे का इस्तेमाल पूरे वर्ष प्रशिक्षण और प्रतियोगिताओं के लिए होता है, तो इसका प्रभाव दीर्घकालिक हो सकता है। खेलों को रोजगार, स्वास्थ्य, शिक्षा और पर्यटन से जोड़ने की क्षमता इसे केवल पदक जीतने का विषय नहीं रहने देती, बल्कि एक व्यापक सामाजिक-आर्थिक क्षेत्र बनाती है।

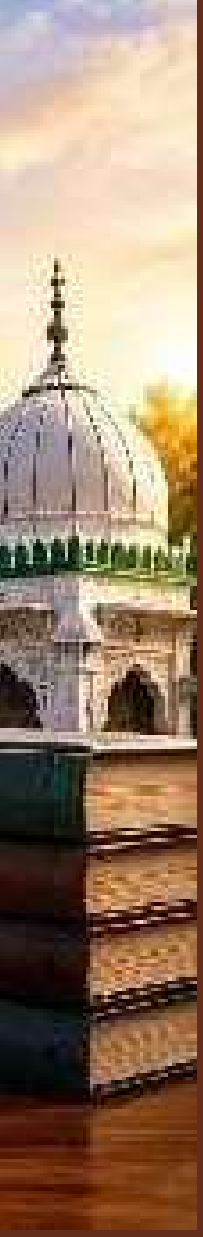


पवित्र स्थलों की गरिमा और कानून की कसौटी

गौतम चौधरी

धार्मिक स्थल केवल ईंट, पत्थर और चूने से बनी इमारतें नहीं होते। मस्जिद की अज़ान, मंदिर की घंटी, चर्च की प्रार्थना, गुरुद्वारे के शबद, दरगाह की रुहानी फिज़ा और खानकाह की महफिल किसी समाज की आस्था, संस्कृति और सामूहिक स्मृति का हिस्सा होती है। कोई धार्मिक स्थल यदि कई पीढ़ियों से किसी बस्ती के जीवन का हिस्सा रहा हो तो उसके साथ लोगों का भावनात्मक जुड़ाव स्वाभाविक है।

यही कारण है कि किसी मस्जिद, मदरसे, मंदिर, चर्च, गुरुद्वारे, दरगाह या खानकाह की भूमि को लेकर उठे सवाल को केवल जमीन के कागज का मामला मानना उचित नहीं होगा। इसके साथ इतिहास, स्थानीय परंपरा, लोगों की भावनाएँ, संपत्ति के अधिकार और कानून सभी जुड़े होते हैं मगर इसका दूसरा पक्ष भी उतना ही महत्वपूर्ण है। धार्मिक पवित्रता कानून से ऊपर नहीं हो सकती और कानून की आड़ में धार्मिक भावनाओं की



उपेक्षा भी नहीं होनी चाहिए। वास्तविक चुनौती इन दोनों के बीच न्यायपूर्ण संतुलन कायम करने की है।

भारत में अनेक धार्मिक स्थल ऐसे समय में स्थापित हुए जब आज जैसी व्यवस्थित भू-अभिलेख व्यवस्था नहीं थी। ग्रामीण क्षेत्रों में भूमि के उपयोग से जुड़े निर्णय कई बार स्थानीय मुखिया, पंचायत, जमींदार या समुदाय के प्रभावशाली लोगों की सहमति से होते थे। कहीं लिखित प्रमाण मिले तो कहीं स्थानीय गवाही, रसीद, रजिस्टर या पंचायत का रिकॉर्ड ही संस्था के अस्तित्व का आधार बना।

इसलिए पचास, सौ या उससे अधिक वर्षों पुराने किसी धार्मिक स्थल के मामले में केवल वर्तमान भूमि रिकॉर्ड देखकर निष्कर्ष निकालना पर्याप्त नहीं होना चाहिए। यह भी देखना होगा कि वह स्थल कब स्थापित हुआ, उस समय भूमि की स्थिति क्या थी, संस्था कितने समय से वहाँ संचालित है और उसके पक्ष में कौन-कौन से पुराने प्रमाण उपलब्ध हैं।

इसका अर्थ यह भी नहीं कि पुराना होना अपने आप में कानूनी स्वामित्व का प्रमाण बन जाए। प्राचीनता सम्मान का आधार हो सकती है लेकिन कानून का विकल्प नहीं। इसी तरह किसी पुराने दस्तावेज के अभाव को भी तत्काल अवैध कब्जे का प्रमाण नहीं माना जाना चाहिए। प्रत्येक मामले की जाँच उसके अपने तथ्यों और प्रमाणों के आधार पर होनी चाहिए।

यह जिम्मेदारी केवल सरकार की नहीं है। धार्मिक संस्थाओं को भी यह समझना होगा कि आस्था के साथ कानूनी सावधानी आवश्यक है। नए धार्मिक स्थल की स्थापना से पहले भूमि का स्वामित्व, उपयोग का अधिकार और आवश्यक अनुमति स्पष्ट होनी चाहिए। पुराने संस्थानों को अपने उपलब्ध दस्तावेज, रजिस्टर, रसीदें और अन्य प्रमाण सुरक्षित रखने चाहिए। जहाँ आवश्यकता हो वहाँ अपनी कानूनी स्थिति की विशेषज्ञों से जाँच करानी चाहिए।

मस्जिद स्थापित करना मुसलमानों के लिए धार्मिक कार्य है लेकिन ऐसी भूमि पर मस्जिद बनाना जिस पर वैध अधिकार या अनुमति न हो, धार्मिक भावना की आड़ में उचित नहीं ठहराया जा सकता। यही सिद्धांत मंदिर, चर्च, गुरुद्वारा, मदरसा, दरगाह और खानकाह सहित प्रत्येक धार्मिक संस्था पर समान रूप से लागू होता है। धार्मिक नेतृत्व की भूमिका यहाँ विशेष रूप से महत्वपूर्ण है। उलेमा, इमाम और धार्मिक संगठन यदि किसी भूमि विवाद के सामने आते ही भावनाओं को उत्तेजित करने के बजाय लोगों को दस्तावेज, कानून और उपलब्ध विकल्पों की जानकारी दें तो विवाद का समाधान अधिक शांतिपूर्ण व सरल ढंग से हो सकता है। लोगों को भावनात्मक बनाना आसान है, जिम्मेदार बनाना धार्मिक नेतृत्व की बड़ी परीक्षा है।

सरकार की जिम्मेदारी भी केवल अतिक्रमण हटाने तक सीमित नहीं होनी चाहिए। यदि कोई पुराना धार्मिक स्थल भूमि या दस्तावेज संबंधी समस्या में है तो पहले रिकॉर्ड की जाँच होनी चाहिए। संस्था को नोटिस दिया जाए, पुराने प्रमाण प्रस्तुत करने का अवसर मिले और संबंधित पक्षों की बात सुनी जाए। साथ ही उस धार्मिक स्थल को कहीं दूसरे स्थान पर स्थानांतरित करने का विकल्प भी दिया जाना चाहिए। यदि मामला केवल दस्तावेजों की कमी या पुरानी प्रशासनिक अनियमितता का है तो जहाँ कानून अनुमति देता हो वहाँ नियमितीकरण का अवसर दिया जा सकता है। इसके लिए पर्याप्त समय और सामान्य धार्मिक संस्थाओं की आर्थिक क्षमता को ध्यान में रखते हुए वहन करने योग्य शुल्क निर्धारित किया जा सकता है।

यह सुविधा किसी एक धर्म तक सीमित नहीं होनी चाहिए। मस्जिद के लिए जो नियम हो, वही मंदिर के लिए हो; मंदिर के लिए जो प्रक्रिया हो, वही चर्च, गुरुद्वारे, मदरसे, दरगाह और खानकाह पर भी लागू हो। राज्य की निष्पक्षता का सबसे बड़ा प्रमाण यही है कि कानून धार्मिक पहचान देखकर अपना स्वरूप न बदले। हाल में संबंधित कुछ स्थानीय प्रशासन पर धर्म व पहचान को देख कर कार्रवाई का आरोप लगा है, जो एक धर्मनिरपेक्ष राष्ट्र के समावेशी संवैधानिक स्वरूप के खिलाफ है।

सीमावर्ती और संवेदनशील क्षेत्रों में राष्ट्रीय सुरक्षा का प्रश्न अलग महत्व रखता है। यदि किसी धार्मिक संस्था के संबंध में वास्तविक सुरक्षा संबंधी आशंका हो तो उसकी जाँच आवश्यक है। मगर सुरक्षा का प्रश्न प्रमाण और तथ्यों पर आधारित होना चाहिए। केवल किसी धार्मिक संस्था की पहचान अपने आप में सुरक्षा संबंधी संदेह का आधार नहीं बन सकती। इसी तरह जहाँ मामला केवल भूमि रिकॉर्ड की कमी का हो वहाँ उसे अनावश्यक रूप से राष्ट्रीय सुरक्षा का प्रश्न बनाना भी उचित नहीं होगा। यही संतुलन न्यायपूर्ण प्रशासन की पहचान है।

कभी सड़क, सार्वजनिक परियोजना, सुरक्षा या किसी अन्य अपरिहार्य परिस्थिति में धार्मिक स्थल के स्थानांतरण का प्रश्न भी सामने आ सकता है। ऐसे मामलों को सामान्य नियम की तरह नहीं देखा जाना चाहिए। प्रत्येक स्थल का अपना इतिहास, धार्मिक महत्व और कानूनी संदर्भ होता है। यदि किसी विशेष मामले में संबंधित धार्मिक विद्वान परिस्थितियों को देखते हुए कोई समाधान स्वीकार करते हैं तो उस निर्णय को उसी मामले की सीमा में समझना चाहिए। उसे देश भर के धार्मिक स्थलों के लिए सामान्य मिसाल बना देना उचित नहीं होगा।

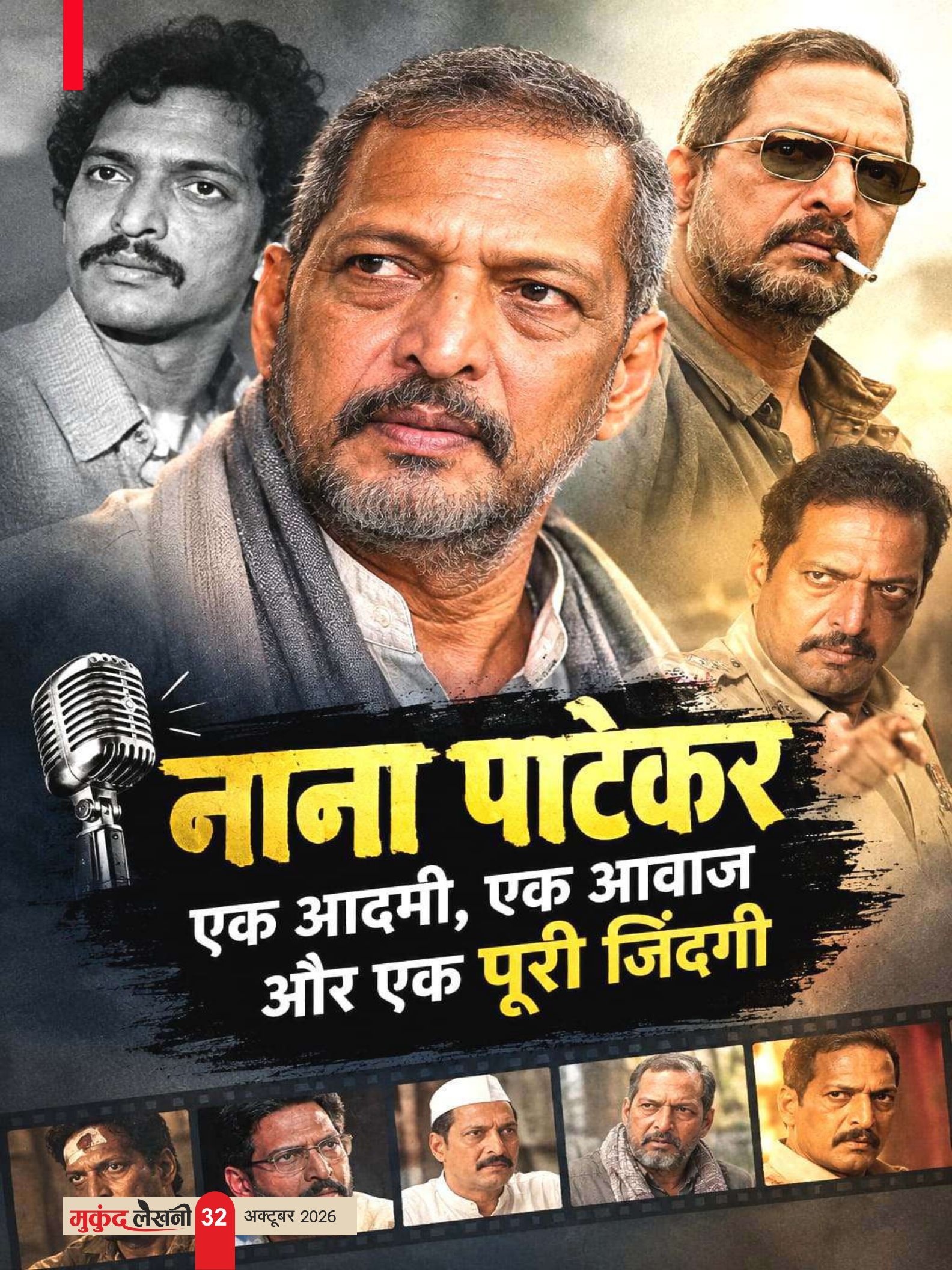
सरकार को ऐसे मामलों में पारदर्शिता रखनी चाहिए और संबंधित समुदाय को यह भरोसा दिलाना चाहिए कि निर्णय विशेष परिस्थितियों के आधार पर लिया गया है, किसी व्यापक धार्मिक नीति के तहत नहीं।

ऐसे संवेदनशील मामलों में समाधान का व्यावहारिक पक्ष क्या है? इस पर भी विचार करने की जरूरत है। पुराने धार्मिक स्थलों के लिए एक समान और स्पष्ट प्रक्रिया बनाई जा सकती है। पहला, भूमि रिकॉर्ड की जाँच हो। दूसरा, संस्था को अपना पक्ष रखने का अवसर मिले। तीसरा, पुराने दस्तावेजों और स्थानीय प्रमाणों को भी देखा जाए। चौथा, दस्तावेज पूरे करने के लिए पर्याप्त समय दिया जाए। पाँचवाँ, जहाँ कानून अनुमति देता हो वहाँ सरल और कम लागत वाली नियमितीकरण प्रक्रिया हो। छठा, गंभीर कानूनी उल्लंघन और वास्तविक सुरक्षा खतरे वाले मामलों को अलग श्रेणी में रखा जाए। सातवाँ, यह पूरी व्यवस्था सभी धर्मों के धार्मिक संस्थानों पर समान रूप से लागू हो। इससे कानून कमजोर नहीं होगा। उलट कानून के प्रति लोगों का विश्वास मजबूत होगा।

धार्मिक स्वतंत्रता का अर्थ कानून से मुक्त होना नहीं है। उसी तरह कानून का शासन यह भी नहीं कहता कि धार्मिक भावनाओं को अनदेखा कर दिया जाए। लोकतांत्रिक समाज में दोनों के बीच संतुलन ही स्थायी रास्ता है। धार्मिक संस्थाओं को अपनी भूमि और दस्तावेजों के प्रति जिम्मेदार होना होगा। सरकार को कार्रवाई में न्याय और संवेदनशीलता रखनी होगी। धार्मिक नेतृत्व को समाज में आस्था के साथ कानूनी चेतना भी पैदा करनी होगी।

आखिरकार सवाल यह नहीं है कि कानून जीते या धर्म। सवाल यह है कि धर्म की गरिमा और कानून की मर्यादा दोनों कैसे सुरक्षित रहें। मस्जिद की पवित्रता का सम्मान हो तो उसकी भूमि के अधिकार का भी सम्मान होना चाहिए। मंदिर, चर्च, गुरुद्वारे, दरगाह और खानकाह की आस्था का सम्मान हो तो उनकी कानूनी जिम्मेदारियों को भी स्वीकार किया जाना चाहिए। राज्य से निष्पक्षता की अपेक्षा हो तो धार्मिक संस्थाओं से भी पारदर्शिता और जिम्मेदारी की अपेक्षा स्वाभाविक है।

पवित्र स्थलों की रक्षा केवल उनकी दीवारों की रक्षा नहीं है। यह आस्था, कानून, न्याय और सामाजिक शांति के बीच संतुलन की रक्षा भी है।



नाना पाटेकर

एक आदमी, एक आवाज और एक पूरी जिंदगी

आ गये मेरी मौत का तमाशा देखने

राजीव तिवारी बाबा

नाना पाटेकर के जाने की खबर सिर्फ सिनेमा के एक अभिनेता के जाने की खबर नहीं है। यह उस आवाज के खामोश हो जाने की खबर है, जो पर्दे पर बोलती थी तो लगता था जैसे हमारे आसपास का कोई आदमी बोल रहा हो। उसमें बनावट नहीं थी, चमक-दमक नहीं थी। उसमें जिंदगी की खुरदुराहट थी, गुस्सा था, दर्द था और सच बोलने की बेचैनी थी। नाना उन कलाकारों में थे जिन्हें देखकर यह महसूस होता था कि अभिनय सीखा नहीं गया, बल्कि जिंदगी से निकाला गया है।

आज उनकी सफलता को देखकर शायद ही कोई अंदाजा लगा सके कि यह सफर 35 रुपये महीने से शुरु हुआ था। किशोर उम्र में नाना स्कूल के बाद फिल्मी पोस्टरों में रंग भरने का काम करते थे। इसके लिए उन्हें महीने के करीब 35 रुपये और एक वक्त का खाना मिलता था। वह कई किलोमीटर पैदल चलकर काम पर जाते थे। यही वह दौर था जब उन्होंने गरीबी को बाहर से नहीं, भीतर से जाना। शायद इसीलिए बाद में जब उन्होंने गरीब, मजदूर, बेरोजगार या टूटे हुए आदमी का किरदार निभाया तो वह अभिनय कम और अनुभव ज्यादा लगता था।

नाना के जीवन में रंगमंच का भी बहुत बड़ा महत्व था। उस समय रंगमंच से न तो बड़ी कमाई होती थी और न ही वह आज की तरह लोकप्रियता देने वाला माध्यम था। घर चलाने के लिए उनकी पत्नी नीलकांति नौकरी करती थीं और नाना थिएटर करते रहे। उन्होंने सुरक्षित रास्ते के बजाय उस रास्ते को चुना जिसे वह अपना मानते थे। यही जिद आगे चलकर उनकी सबसे बड़ी ताकत बनी। उन्होंने अभिनेता बनने की कोशिश नहीं की, उन्होंने अभिनेता की तरह जीना शुरु किया।

फिल्मों में उनका आना भी किसी चमकदार सपने की तरह नहीं हुआ। शुरुआत छोटी भूमिकाओं से हुई और लंबे समय तक उन्हें वह पहचान नहीं मिली जिसके वह हकदार थे। लेकिन नाना ने कभी अपने अभिनय को सिर्फ रोजी-रोटी का जरिया नहीं माना। वह भूमिका चुनते थे, उसमें उतरते थे और उसे अपना बना लेते थे। परिंदा जैसी फिल्म ने उन्हें एक अलग पहचान दी और क्रांतिवीर ने उन्हें घर-घर पहुंचा दिया।

क्रांतिवीर का उनका वह संवाद आज भी याद किया जाता है—"ये मुसलमान का खून, ये हिंदू का खून, बता इसमें मुसलमान का खून कौन सा है और हिंदू का कौन सा?" यह संवाद इसलिए असरदार था क्योंकि नाना के चेहरे पर सिर्फ गुस्सा नहीं था, उसके पीछे एक बेचैन आदमी था जो समाज से सवाल कर रहा था। उनकी आवाज में जो आक्रोश सुनाई देता था, वह बनावटी नहीं लगता था। शायद इसलिए कि नाना खुद जिंदगी के अन्याय को बहुत करीब से देख चुके थे।

लेकिन नाना को सिर्फ गुस्से का अभिनेता समझना उनके साथ अन्याय होगा। वही आदमी वेलकम में उदय शेट्टी बनकर लोगों को हंसा सकता था। "कंट्रोल, उदय, कंट्रोल" जैसे संवाद उनकी दूसरी छवि लेकर आए। इससे साबित हुआ कि जिस अभिनेता को लोग गंभीर और विद्रोही भूमिकाओं के लिए जानते हैं, उसके भीतर हास्य की भी उतनी ही गहरी समझ है। नाना की असली खूबी यही थी कि वह किसी एक खांचे में बंद नहीं हुए।

उनके जीवन का एक कम चर्चित पक्ष सैनिकों और सेना के प्रति उनका लगाव था। उन्होंने प्रादेशिक सेना का प्रशिक्षण लिया था और कारगिल युद्ध के समय सैनिकों के बीच जाने की इच्छा जताई थी। वह युद्ध क्षेत्र तक गए और सैनिकों के बीच समय बिताया। यह उस समय की बात है जब उनका फिल्मी कद काफी बड़ा हो चुका था। फिर भी उन्होंने देशभक्ति को केवल पर्दे पर संवाद बोलने तक सीमित नहीं रखा।

नाना के जीवन में निजी दुख भी कम नहीं थे। उनके बड़े बेटे दुर्वासा का जन्म शारीरिक विकलांगता के साथ हुआ और मात्र ढाई वर्ष की उम्र में उनका निधन हो गया। यह ऐसी पीड़ा थी जिसे कोई पुरस्कार, कोई सफलता और कोई प्रसिद्धि कम नहीं कर सकती थी। वर्षों बाद जब नाना ने इस घटना के बारे में बात की तो उनके शब्दों में एक पिता का अपराधबोध और टूटन साफ दिखाई देती थी। शायद यही वजह थी कि उनके अभिनय में पिता का दर्द इतना वास्तविक लगता था।

उनकी जिंदगी का दूसरा बड़ा पक्ष किसानों और गांवों से जुड़ा था। महाराष्ट्र में किसानों की आत्महत्याओं और सूखे ने उन्हें भीतर तक प्रभावित किया। उन्होंने अभिनेता मकरंद अनासपुरे के साथ मिलकर नाम फाउंडेशन के जरिए किसानों और गांवों के लिए काम शुरु किया। पानी, खेती और गांवों की बुनियादी जरूरतों से जुड़े कामों में उन्होंने अपना समय और प्रभाव लगाया। यह काम किसी फिल्म के प्रचार का हिस्सा नहीं था। यह उस आदमी की बेचैनी थी जो पर्दे पर दूसरों का दुख दिखाने के बाद वास्तविक जीवन में भी उससे मुंह नहीं मोड़ना चाहता था।

नाना का व्यक्तित्व पूरी तरह निर्दोष या निर्विवाद भी नहीं था। उनका गुस्सा उनके जीवन का हिस्सा था और कई बार वही गुस्सा उनके लिए परेशानी का कारण बना। उनके व्यवहार और निजी जीवन को लेकर विवाद भी हुए। 2018 में अभिनेत्री तनुश्री दत्ता ने उन पर यौन उत्पीड़न के आरोप लगाए, जिन्हें नाना ने खारिज किया। बाद में पुलिस ने पर्याप्त सबूत न मिलने का हवाला देते हुए मामला बंद करने की रिपोर्ट दाखिल की, हालांकि इस रिपोर्ट का विरोध भी हुआ। किसी भी बड़े सार्वजनिक व्यक्ति को याद करते समय उसके जीवन के ऐसे विवादित अध्यायों को छिपा देना उचित नहीं है।

दरअसल, नाना पाटेकर की कहानी इसलिए महत्वपूर्ण है कि वह किसी आदर्श आदमी की कहानी नहीं है। यह एक ऐसे आदमी की कहानी है जिसमें अच्छाइयां भी थीं और कमियां भी। उसमें गुस्सा था तो करुणा भी थी। उसमें अहंकार के क्षण थे तो विनम्रता के भी। उसने गलतियां कीं और अपने जीवन के कुछ फैसलों पर पछतावा भी किया। लेकिन शायद महान कलाकार वही होता है जो अपनी कमजोरियों समेत दर्शकों के सामने खड़ा हो सके।

नाना के अभिनय की सबसे बड़ी ताकत उनकी आवाज थी, लेकिन उनकी आवाज के पीछे उनकी जिंदगी थी। वह आवाज उस लड़के की थी जिसने गरीबी देखी थी। वह उस युवक की थी जिसने रंगमंच के लिए संघर्ष किया था। वह उस पिता की थी जिसने अपना बच्चा खोया था। वह उस आदमी की थी जिसने किसानों की आत्महत्या देखी थी। और वह उस अभिनेता की थी जिसने अपने किरदारों को सिर्फ निभाया नहीं, उन्हें भीतर तक महसूस किया।

नाना पाटेकर को याद करने का सबसे सही तरीका शायद उनकी फिल्मों की सूची गिनाना नहीं है। उन्हें याद करने का सही तरीका उस संघर्ष को याद करना है जिसने उन्हें बनाया। 35 रुपये से शुरु हुआ वह सफर करोड़ों लोगों के दिलों तक पहुंचा। लेकिन दिलचस्प बात यह है कि सफलता के शिखर पर पहुंचकर भी उनके भीतर का वह संघर्षरत आदमी पूरी तरह मरा नहीं। शायद वही आदमी उन्हें बाकी सितारों से अलग करता रहा।

नाना की जिंदगी हमें यह भी बताती है कि प्रसिद्धि आदमी को बड़ा नहीं बनाती। आदमी बड़ा तब होता है जब प्रसिद्धि मिलने के बाद भी उसे दूसरों का दर्द दिखाई देता रहे। नाना ने अपने तरीके से यह साबित करने की कोशिश की। कभी फिल्मों में, कभी रंगमंच पर, कभी सैनिकों के बीच और कभी किसानों के साथ खड़े होकर।

उनके जाने के बाद उनके संवाद जरूर याद किए जाएंगे। "कंट्रोल, उदय, कंट्रोल" पर लोग मुस्कुराएंगे। "ये मुसलमान का खून, ये हिंदू का खून..." पर लोग ठहरकर सोचेंगे। लेकिन शायद आने वाले समय में उनके सबसे बड़े संवाद उनकी फिल्में नहीं, उनकी जिंदगी होगी।

एक ऐसा लड़का जिसने गरीबी से शुरुआत की। एक ऐसा अभिनेता जिसने रंगमंच को अपना घर बनाया। एक ऐसा कलाकार जिसने किरदारों में अपनी जिंदगी के अनुभव भर दिए। एक ऐसा पिता जिसने निजी त्रासदी को अपने भीतर ढोया। और एक ऐसा इंसान जिसने अपनी लोकप्रियता का कुछ हिस्सा उन लोगों के लिए लगाने की कोशिश की जिन्हें समाज अक्सर भूल जाता है।

नाना पाटेकर का जाना इसलिए एक अभिनेता का जाना नहीं है। यह उस दौर का अंत है जिसमें अभिनेता पर्दे पर सिर्फ चेहरा नहीं होता था, उसकी अपनी एक आवाज होती थी, अपना गुस्सा होता था और अपनी सामाजिक बेचैनी होती थी। नाना पाटेकर को श्रद्धांजलि देते हुए शायद इतना ही कहा जा सकता है—उन्होंने जिंदगी को आसान नहीं पाया, लेकिन मुश्किल जिंदगी को अभिनय की ऐसी भाषा दी जिसे आने वाली पीढ़ियां लंबे समय तक समझती रहेंगी। नाना अच्छे अभिनेता थे, इसलिए याद रहेंगे लेकिन वह एक अच्छे इंसान थे, इसलिए भुलाए नहीं जाएंगे।

स्मार्ट सिंचाई से डिजिटल शासन तक: तकनीक का ग्रामीण अर्थव्यवस्था में प्रवेश

तकनीक का इस्तेमाल अब केवल आईटी कंपनियों तक सीमित नहीं रहा। कृषि, सिंचाई, जल प्रबंधन और सरकारी सेवाओं में डिजिटल साधनों का उपयोग बढ़ रहा है। अंतरराष्ट्रीय व्यापार मेले में स्मार्ट सिंचाई और जल प्रबंधन तकनीकों के प्रदर्शन की जानकारी भी सामने आई है।

कृषि क्षेत्र में पानी की उपलब्धता और उसका कुशल उपयोग महत्वपूर्ण है। सेंसर, मौसम संबंधी आंकड़े, स्वचालित सिंचाई प्रणाली और डिजिटल निगरानी जैसी तकनीकें पानी के उपयोग को अधिक सटीक बनाने में मदद कर सकती हैं। इससे किसानों को सिंचाई की जरूरत का बेहतर अनुमान मिल सकता है।

जल प्रबंधन में डिजिटल तकनीक का दूसरा उपयोग शहरी क्षेत्रों में हो सकता है। पाइपलाइन, जलाशय और उपचार संयंत्रों की निगरानी के लिए सेंसर आधारित प्रणालियां उपयोगी हो सकती हैं। इससे रिसाव और आपूर्ति की समस्या पहचानने में मदद मिल सकती है।

सरकारी योजनाओं में भी डिजिटल निगरानी का इस्तेमाल बढ़ रहा है। परियोजनाओं की प्रगति, भुगतान, लाभार्थियों और बुनियादी ढांचे की निगरानी के लिए डिजिटल मंच प्रशासन को डेटा उपलब्ध कराते हैं।

तकनीक की सफलता के लिए केवल उपकरण खरीदना पर्याप्त नहीं है। स्थानीय कर्मचारियों और किसानों को इसका उपयोग सिखाना भी जरूरी है। यदि तकनीक जटिल होगी या रखरखाव महंगा होगा तो उसका उपयोग लंबे समय तक कठिन हो सकता है।

ग्रामीण तकनीक में स्थानीय उद्यमियों के लिए भी अवसर हैं। ड्रोन आधारित कृषि सेवाएं, मिट्टी परीक्षण, डिजिटल बाजार, मौसम सलाह और सिंचाई उपकरण जैसी सेवाओं में छोटे व्यवसाय विकसित हो सकते हैं।

डिजिटल तकनीक का लाभ तभी व्यापक होगा जब इंटरनेट और बिजली की विश्वसनीय उपलब्धता हो। इसलिए डिजिटल विकास और भौतिक बुनियादी ढांचे को अलग-अलग नहीं देखा जा सकता।

स्मार्ट सिंचाई जैसी तकनीक आने वाले समय में कृषि उत्पादकता, पानी की बचत और लागत नियंत्रण में भूमिका निभा सकती है। लेकिन इसके परिणामों को मापने के लिए फसल उत्पादन, पानी की खपत और किसान आय के आंकड़ों की नियमित निगरानी आवश्यक होगी।



VPL BLOOD BANK & COMPONENT CENTER

Safe Blood | Healthy Tomorrow

Donate Blood Save Lives

रक्तदान महादान

Every Drop Counts...
Give Blood Give Hope

6th ANNIVERSARY



6 Years of Saving Lives Through Voluntary Blood Donation

VOLUNTARY BLOOD DONATION
A Gift of Life

SAFE & QUALITY BLOOD PRODUCTS
For a Healthier Society

SUPPORTING PATIENTS
In Critical Care

BUILDING A HEALTHIER COMMUNITY
Together We Can

COMPONENT THERAPY
Right Blood | Right Patient Right Time

आप सभी के सहयोग और विश्वास के लिए
हार्दिक धन्यवाद!

Together We Save Lives

VPL BLOOD BANK & COMPONENT CENTER
Belhaiya Chauraha, Siddarthnagar

Mobile:
9452816654

विरासत का मान, विकास का अभियान
प्रयागराज

अतुल्य आस्था उत्सव प्रदेश

प्रयागराज में 11 मंदिर कॉरिडोर विकसित

हनुमान मंदिर कॉरिडोर, अक्षयवट मंदिर–सरस्वती कूप कॉरिडोर एवं भारद्वाज आश्रम कॉरिडोर से पर्यटन को विस्तार

यमुना नदी घाट पर पौराणिक कथाओं पर आधारित वॉटर लेजर शो

गंगा एक्सप्रेसवे का 16 कि.मी. हिस्सा जनपद में स्थित



विकास की गति अपार-डबल इंजन सरकार

सूचना एवं जनसम्पर्क विभाग, उत्तर प्रदेश
UPGovtOfficial CMOUttarpradesh CMOfficeUP